के नो प नि ष द्

[मंत्र, पदच्छेद, अन्वय, शब्द, शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या
और
अंग्रेजी अनुवाद]

अनुवादक व संग्रहकर्ता
आहिताग्नि यमुनाप्रसाद त्रिपाठी
बी० ए०, आई, पी, एस

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली : वाराणसी : पटना

प्रकाशक :
सुन्दरलाल जैन

पो० बा० ७५, नेपाली खपरा,
वाराणसी-१.

●

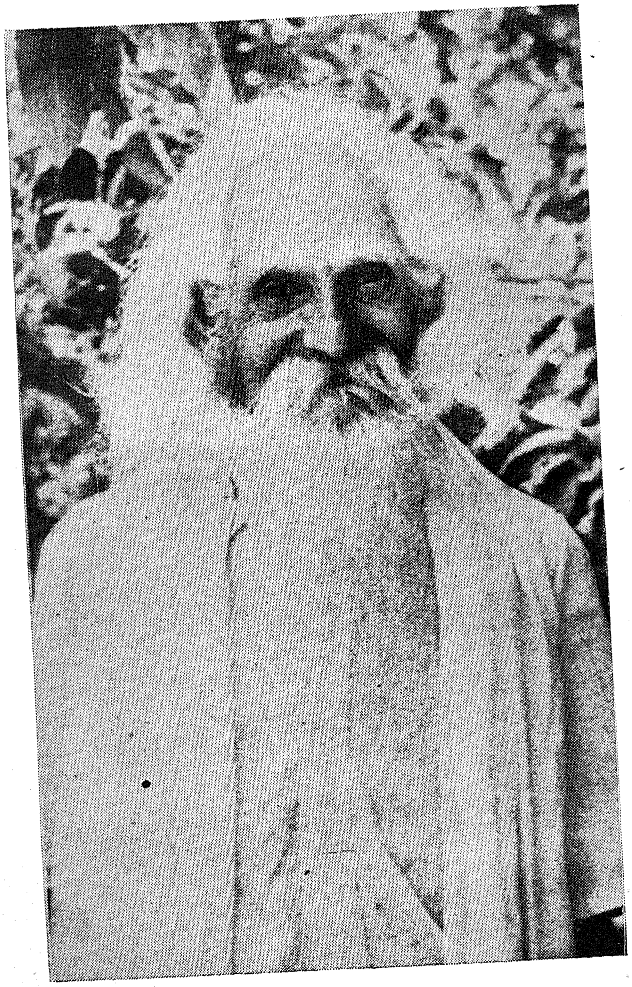
प्रथम संस्करण : १९६३

●

मूल्य : ४.००

मुद्रक :
लक्ष्मीदास
बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस,
वाराणसी-५.

केनोपनिषद्



आदरणीय पं० श्री वास जी पाण्डे

समर्पण

यह पुस्तक श्री पं० श्रीवास पाण्डे जी

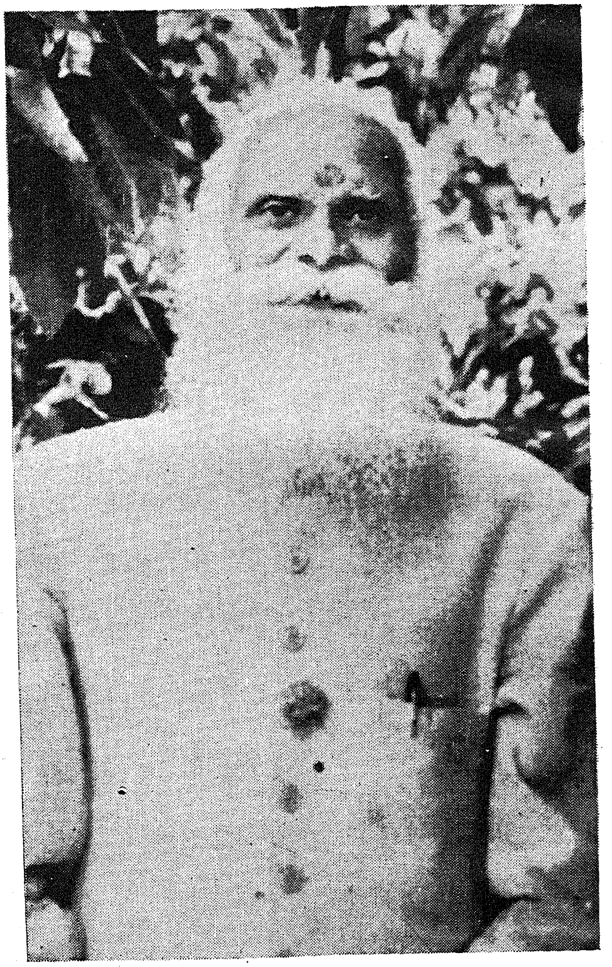
को

जिनकी कृपा से यह तय्यार हुई है

समर्पित है

आहिताग्नि यमुनाप्रसाद त्रिपाठी

केनोपनिषद्



आहिताग्नि पं० यमुना प्रसाद त्रिपाठी
बी० ए०, आई० पी० एस्०

शुभकामनापत्र

* श्रीहरिः *

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य
बदरिकाश्रम ज्योतिष्पीठाधीश्वर
स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज

संचारस्थान
दिल्ली
चैत्र शुक्ल रामनवमी
सं० २०२०
दिनांक अप्रैल २, १९६३।

आनन्दमङ्गलाभिलाषी श्री पं० यमुनाप्रसाद जी त्रिपाठी सामवेदी अपनी शाखा के अनुसार अग्निहोत्रादि क्रियाकलाप में निष्णात हैं। उन्होंने श्री गुरुमुख से सामवेद की तलवकार शाखा का केनोपनिषद् सविधि अध्ययन किया है। उसका जो तत्त्व बुद्धि में निश्चित हुआ है उसी को जिज्ञासु जनों के कल्याणार्थ व्याख्यान रूप से उपस्थित किया है।

आशा है जिज्ञासु जन इससे लाभ उठाकर कृतकृत्य होवेंगे। हमारी शुभकामना है।

श्रीकृष्णबोधाश्रम

विषयानुक्रमणी

भूमिका

इस उपनिषद् का नाम केनोपनिषद् है। इस उपनिषद् के पहिले मंत्र का पहिला शब्द 'केन' है। इसी 'केन' शब्द के कारण मालूम होता है कि इस उपनिषद् का नाम 'केनोपनिषद्' रक्खा गया। इसी तरह 'ईशोपनिषद्' में 'ईशा' शब्द के आदि में होने के कारण उस उपनिषद् का नाम 'ईशोपनिषद्' पड़ा।

इस उपनिषद् में आदि और अन्त में शान्तिपाठ है। यही शान्तिपाठ सामवेदीय उपनिषदों में प्रायः सर्वत्र है। इस शान्तिपाठ में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि शरीर के सब अंग पुष्ट हों। ईश्वर की याद न भूले। ईश्वर हमको न भूले। जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में है वे सब प्राप्त हो जाँय।

इस उपनिषद् में चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में आठ मंत्र हैं। जिनमें से अन्तिम पाँच के तृतीय तथा चतुर्थ पाद "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" इन सब मंत्रों में एक ही है। इसका अर्थ यह है कि उसी को तुम ब्रह्म समझो तथा यह जिसकी उपासना की जाती है वह ब्रह्म नहीं है। एक प्रकार से उपासना की विधि जो इन पाँचों मंत्रों में कही गई है उनसे उपासना की विधि कुछ और ही है—ऐसा समझ पड़ता है। इससे सम्भव है कि कुछ लोगों के मन में यह भावना पैदा हो कि इस उपनिषद् में सगुण उपासना का निषेध किया गया है। परन्तु विचार करने से ऐसी बात नहीं मालूम होती। चौथे खण्ड के छठे मंत्र में 'उपासितव्यम्' यह स्पष्ट रूप से आया है। उपासना का क्या रूप होना चाहिए? यह बात इस उपनिषद् में दिखलाई गई है।

दूसरे खण्ड में परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान होने की कठिनता स्पष्ट दिखाई गई है और यह बात भी कही गई है कि मनुष्य यदि इसी जीवन में परब्रह्म परमात्मा को जान सका तो सबसे बड़ा लाभ हुआ और यदि न जान सका तो सबसे बड़ी हानि होगी।

तीसरे खण्ड में आख्यायिका के रूप में यह कहा गया है कि अग्नि, वायु और इन्द्र जो सबसे बड़े देवता हैं वे भी परब्रह्म परमात्मा को न जान सके।

अग्नि और वायु तो हताश होकर चुपचाप रह गये; परन्तु इन्द्रदेव ने उमादेवी से पूछ कर ज्ञान प्राप्त किया।

चौथे खण्ड में उमादेवी ने इन्द्र को यह बतलाया कि जो कुछ तुम्हारी विजय होती है और उससे तुम महिमा को प्राप्त करते हो, वह सचमुच उसी यक्ष, जो परब्रह्म परमात्मा है, की विजय का फल है। तुम्हारा इसमें कोई श्रेय नहीं है। किसी भी प्रकार इसमें तुम्हारी प्रशंसा की बात नहीं है। तुमको घमंड न करना चाहिए।

इस आख्यायिका के द्वारा ऋषि इस बात को दिखलाते है कि सभी देवताओं में अग्नि बड़े है। वायु उनसे भी बड़े है और इन्द्र सबसे बड़े हैं। आगे चलकर ऋषि परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत ज्ञान को इस प्रकार समझाते हैं कि जैसे बिजली चमकती है और उसके प्रकाश से दृश्य जगत् प्रकाशित हो जाता है तथा उसका संस्कार कुछ समय तक रहता है। और फिर बिजली चमकती है और दृश्य जगत् फिर प्रकाशित हो जाता है, इसी प्रकार यह कार्य होता रहता है। उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा के प्रकाश से यह संसार प्रकाशित होता रहता है, उसका रूप बदलता रहता है। तथा दूसरी विधि इस प्रकार बतलाते हैं कि जैसे आँख के खोलने से बाह्य जगत् प्रकाशित हो जाता है और पलक के बंद होने पर फिर छिप जाता है उसी प्रकार भगवान् के सम्बन्ध से यह जगत् प्रकाशित हो जाता है और उनका सम्बन्ध भूल जाता है तो यह जगत् विलीन हो जाता है।

अध्यात्म ज्ञान के सम्बन्ध में इस उपनिषद् में कहा गया है कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक पहुँचता और लौटता हुआ सा मालूम होता है तथा जिस प्रकार मनुष्य के संकल्प से बार-बार मनको परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करना पड़ता है और वहां से अलग होने पर भक्त फिर उसी मन को वहाँ जाने के लिये प्रेरित करता है।

छठे मंत्र में ऋषि अपने सिद्धान्त को निश्चित रूप से इस प्रकार प्रकट करते हैं कि परब्रह्म परमात्मा की पूजा चाहे जिस प्रकार की जाय; परन्तु सदा भावना इस प्रकार से होनी चाहिए कि वह परब्रह्म परमात्मा केवल आनन्दमय है। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् की उपासना करता है वह सबका प्रिय हो जाता है और प्रिय बना रहता है।

सातवें मंत्र में शिष्य के पूछने पर गुरु अथवा ऋषि ने यह कहा कि उपनिषद् का ज्ञान तो पूरा हो गया परन्तु आठवें मंत्र में फिर आगे बतलाते हैं

कि इस परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति के लिये मनुष्य को कर्म करना चाहिए। परन्तु वह कर्म शास्त्रविहित हो। कर्म के साथ तपस्या भी करनी चाहिए ताकि इन्द्रियाँ काबू में रहें। शास्त्र का अर्थ यह है कि वेद सबके मूल हैं। उनको समझने के लिये ६ अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष है। इनके ज्ञान के बिना वेदों का तात्पर्य ठीक ठीक समझ में नहीं आता। अनेक आर्ष ग्रन्थों में "परोक्षप्रिया इव हि देवाः" ऐसा कहा गया है। जैसे ऐतरयोपनिषद् (तृतीय खण्ड मंत्र १४) में कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि देवताओं को परोक्ष रहना ही प्रिय है, प्रत्यक्ष होना प्रिय नहीं हैं। संसार में भी आदर करने के लिये लोग दूसरों को उनके नाम न लेकर उपाधि द्वारा उनको सम्बोधित करते है। जैसे त्रिपाठी जी, मिश्र जी इत्यादि। श्रीमद्भागवत मे भी ऐसा ही कहा गया है कि वेदों का तात्पर्य शब्दार्थों में छिपा रहता है। ढूढने से ही मिलता है। अस्तु वेदों के समझने के लिये इन छः अंगों के जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके बिना वेदों का ठीक ठीक अर्थ नहीं निकल सकता। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि बुद्धि तीन प्रकार की होती है, सतोगुणी जो यथार्थ रूप से समझती है, रजोगुणी जो ठीक-ठीक नही समझती और तमोगुणी जो उल्टा समझती है यानी धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म (गीता अध्याय १८, श्लोक ३०,३१,३२) ऋषियों ने उपनिषद् ब्राह्मण तथा और भी आर्ष ग्रन्थों में वेदों का तात्पर्य समझाने का प्रयत्न किया है। ऐसे ग्रन्थों में मनुस्मृति, पुराण तथा दर्शन इत्यादि भी आ जाते है। वेदों के समझने के लिये सत्य का आचरण भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जो सत्य-निष्ठ नहीं है वह सत्य को समझ ही नहीं सकता। वेद सत्य के अर्थ के प्रकाशक हैं। वे उनके लिये अगम्य हैं।

सत्य क्या है और असत्य क्या है; इसकी भी मीमांसा आसान नहीं है। जैसा कि रामायण में कहा गया है "जानहि झूठ न साँच"। सत्य क्या है इसके जानने के लिये आप्त पुरुषों, यानी ऐसे पुरुष जिन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, का वचन सुनना चाहिए।

अंतिम मंत्र में इस उपनिषद् में यह कहा गया है कि जो इस उपनिषद् को इस प्रकार ठीक-ठीक जानता है वह पाप से रहित होकर सबसे श्रेष्ठ अनन्त स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने अनेक उपनिषदों की व्याख्या की है उनमें से एक यह भी है। परन्तु यह एक ऐसी उपनिषद् है कि जिसकी टीका उनको दुबारा करने की आवश्यकता जान पड़ी। एक टीका का नाम पद-भाष्य है और दूसरी टीका का नाम वाक्यभाष्य है। यह केनोपनिषद् सामवेद से सम्बन्ध रखने वाली उपनिषद् है। दूसरी उपनिषद् जो सामवेद से सम्बन्ध रखती है उसका नाम छान्दोग्य उपनिषद् है। इन दोनों उपनिषदों पर स्वामी शंकराचार्य ने टीका की है। सामवेद के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण जी का वचन है "वेदानां सामवेदोऽस्मि" (गीता अ० १०, मं० २२) अर्थात् मैं वेदों में सामवेद हूँ। सामवेद के लिये प्रश्नोपनिषद् मे ऐसा कहा गया है "स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्" (पञ्चम प्रश्न, मंत्र ५) अर्थात् वह पाप से रहित मनुष्य सामवेद की श्रुतियों द्वारा ब्रह्म लोक ले जाया जाता है। इसी भाव को फिर प्रश्नोपनिषद् के पंचम प्रश्न के सातवें मंत्र में कहा गया है। अतः यह केनोपनिषद् बहुत गूढ़, गम्भीर और रहस्यमय है। केनोपनिषद् सामवेद की तलबकार शाखा के उपनिषद् ब्राह्मण में है।

"शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय" यह तुलसीकृत रामायण में आरण्य काण्ड की अर्धाली है। अर्थात् जिस शास्त्र का अच्छी तरह से विचार किया है उस पर भी बार-बार और खूब सोचना और विचार करना चाहिए। जैसे गाय के दूध को दुह कर, छान कर तथा अच्छी तरह से गरम कर, दही जमा कर मथने से पहिले नवनीत निकलता है फिर गरम करने से शुद्ध घी निकल आता है और उस घी का दीपक जलाने से स्वयं अपने को प्रकाश मिलता है तथा दूसरे भी उस प्रकाश से लाभ उठाते है; इसी प्रकार जो उत्तम शास्त्र को पढ़ कर धारण करते हैं, तथा उस पर विचार कर एवं मथ कर सच्चे ज्ञान को प्राप्त करते है उससे वे स्वयं अपने को आनन्दित करते है और मनः-प्रसाद द्वारा दूसरों को भी आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार इसे तथा और भी आर्ष ग्रन्थों को पढ़कर अच्छी तरह सोचना, विचारना और मनन करना चाहिए। टीका इत्यादि से पथ-प्रदर्शक का काम तो ले लें; परन्तु काम अपनी ही आँखों से लें, उनकी आँखों से नहीं। मूल को "मूल" समझें और टीका को महज़ टीका ही समझना चाहिए। मूल में असत्य की छाया में टीकाओं में मतभेद हो सकता है और होता है। अस्तु, प्रार्थना है कि जो महाशय भी इसको पढ़ें वे इसकी टीका में दोष देखकर यह न समझ लें कि मूल में भी दोष है।

अब थोड़ा-सा प्रकाश इस बात पर डालना चाहता हूँ कि यह पुस्तक कैसे तैयार होकर आपके सामने आई। इसमें मेरा किञ्चिन्मात्र भी श्रेय नहीं है। मैं तो हिन्दी बहुत कम जानता हूँ और संस्कृत का तो कहना ही क्या ! मेरी अवस्था इस समय सत्तावन वर्ष की है। मैंने बत्तीस वर्ष पुलिस विभाग में सर्विस की और अप्रैल सन् १९६२ से रिटायर हुआ। मेरे पिता जी भी पुलिस विभाग में काम करते थे और वे ३० वर्ष काम करने के बाद सन् १९२२ में रिटायर हुए। उस समय मैं नवें दर्जे मे अंग्रेजी पढ़ता था। उस जमानें में उर्दू अदालत की ज़बान थी। इससे नौकरी पेशा लोग अपने लड़कों को उर्दू-फारसी पढ़ाते थे। मेरी भी शुरू तालीम मोलवी साहेब के ज़ेर तहत हुई और फ़ारसी के ग्रन्थ करीमा व ख़ालिक़बारी जबानी याद कराये गये तथा उर्दू लिखने की मश्क़ की गई। मैंने दसवें तक उर्दू-फ़ारसी ही अंग्रेजी के साथ पढ़ी। मेरी बड़ी बहन हिन्दी पढ़ती थीं। उन्हीं के संसर्ग में हिन्दी की वर्णमाला बचपन में सीखी और और छठवें से दसवें दर्जे तक हिन्दी सेकेन्ड फ़ारम के तौर पर पढ़ी। मेरे श्वसुर पं० श्यामसुन्दर ब्रह्मचारी प्रयागराज के निकट जयन्तीपुर ग्राम के थे। वे बड़े धुरन्धर वैयाकरण और संस्कृत के विद्वान् थे। उनको पूरा महाभाष्य कण्ठस्थ था और उसका वे पाठ किया करते थे। सन् १९४२ में मैं उनके संसर्ग में आया और उन्होंने बहुत कोशिश की कि मै संस्कृत उनसे पढ़ लूँ; परन्तु मेरी इस तरफ़ बिल्कुल प्रवृत्ति न हुई। मै सन् १९४९ से १९५० तक काशी में सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस रहा, जो विद्या का भण्डार और विद्वानों का केन्द्र है। लेकिन काशी में रहते मैंने न तो विद्या ही पढ़ी और न विद्वानों का संपर्क मुझसे काशी में हुआ जब सन् १९५१ में मै सी० आई० डी० विभाग में सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर आया, तो श्री हृदयनारायण जी के सत्संग से रामायण पढ़ने की तरफ प्रवृत्ति हुई और मैं रामायण की पाँच चौपाईयों का रोज़ पाठ करने लगा। बस यहीं से काया पलट हो गई।

एक दिन रामायण के पाठ मे यह चौपाई पढ़ी "सोचिय विप्र जो वेद विहीना" बस बड़ी ही ग्लानि हुई कि ब्राह्मण होते हुए वेद नहीं जानते। उसी दिन स्वर्गीय श्री पं० तेजोनारायण जी पाण्डे शास्त्री, जो कान्यकुब्ज कालेज में संस्कृत टीचर थे और मेरे यहाँ आते जाते थे, से मैंने कहा कि मै वेद पढ़ूंगा। उन्होंने राय दी कि मैं पहिले बाल्मीकि रामायण पढ़ूँ और थोड़ा व्याकरण पढ़ूँ। बस उसी दिन पुस्तकें लाया और पढ़ाई शुरू कर दी। यह सन् १९५२ की

बात है। श्री पंडित तेजोनारायण जी से यजुर्वेद थोड़ा पढ़ा तो बहुत सी बातें मालूम हुईं। श्री पं० तेजोनारायण जी के पिता श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, जो आर्य समाज के संचालक थे, के शिष्य थे और वे बड़े भारी विद्वान् थे। श्री पं० तेजोनारायण जी भी कई विषयों के शास्त्री थे और बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होंने मुझ से कहा कि उनको वेद के स्वर का ज्ञान जैसा होना चाहिए, नहीं है। इसलिए श्री पं० गयादीन जी यजुर्वेदी जिनको संपूर्ण यजुर्वेद सस्वर कंठ है, की सेवा में उपस्थित होकर यजुर्वेद की रुद्री सस्वर पढ़ी। उस समय तक मुझको यह भी ज्ञान नहीं था कि मेरा वेद सामवेद है।

सन् १९५४ में कुम्भ मेला प्रयाग का मैं सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस इन्चार्ज था। उस साल कुंभ मेले में जो दुर्घटना हुई उससे मेरी प्रवृत्ति ब्रह्म-तत्त्ववेत्ता योगिराज श्री देवरहा बाबा जी के संपर्क से कुछ धार्मिक हुई। काशी में पंडित नारायणदत्त पाण्डे जो मेरे रिस्तेदार हैं, के यहाँ सरयूपारीण वंशावली इसी साल देखने का मौका मिला जिससे मालूम हुआ कि मै सामवेदी हूँ। बस अब धुन लग गई कि सामवेद पढ़ा जाय। लखनऊ में उस समय कोई सामवेद के जानने वाले न थे। बहुत जाँच करने पर मालूम हुआ कि बड़ौरा ग्राम जिला उन्नाव में श्री पं० शिवसेवक त्रिपाठी सामवेदी हैं। उनसे सामवेद पढ़ना शुरू किया; लेकिन कुछ प्रगति न कर सका। फिर भी तलाश रही कि कोई अच्छे सामवेद के ज्ञाता मिलें तो सामवेद पढ़ूं। इसी दरमियान में श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी जी, मेहदावल, जिला बस्ती से मैंने ज़िकिर किया तो उन्होंने कहा कि वे सामवेदी ब्राह्मण, जो सामवेद अच्छी तरह जानते हों, का इन्तजाम कर देगें और श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी जी की ही कृपा से श्री पण्डित ऋषिशंकर त्रिपाठी अग्निहोत्री सामवेदाचार्य से परिचय हुआ। वे वक्त पाकर लखनऊ पधारे तथा मुझको सामवेद पढ़ाना शुरू किया। पुलिस विभाग में नौकरी करते हुए ज़्यादा समय न मिल सका, लेकिन जो कुछ थोड़ा ज्ञान सामवेद के गान का हुआ वह श्री पं० ऋषिशंकर त्रिपाठी अग्निहोत्री सामवेदाचार्य की कृपा का नतीजा था। मैंने और मेरे प्रथम संस्कृत गुरु पंडित तेजोनारायण पाण्डे जी ने साथ-साथ उनसे सामवेद पढ़ा।

फिर श्री ग्रिफिथ के सामवेद का अंग्रेजी अनुवाद और कई टीकाये हिन्दी में सामवेद की पढ़ी। सन् १९५८-५९ में श्री पं० तेजोनारायण जी की कृपा से सामवेद की रुद्री के मंत्रों का हिन्दी अनुवाद व श्री ग्रिफिथ की पुस्तक से अंग्रेजी अनुवाद संकलित करके इसलिए लिखा कि मंत्रों का बोध हो जाय। श्री

सत्यदेव ब्रह्मचारी जी ने इसको देखा, वे बड़े प्रसन्न हुए। इसी दरमियान में ईश्वर की ही प्रेरणा से मैंने अग्निहोत्र ग्रहण किया और सामवेदी पद्धति से प्रायश्चित्त करके अग्निग्रहण किया। इसकी पूर्णरूप से जानकारी के लिए संस्कृत की सामवेदी पद्धति का श्री पं० श्रीवास पाण्डे जी से अनुवाद कराया और मैंने लिखा। बस, फिर तो आभास हुआ कि अगर कोई ग्रन्थ पढ़ना हो तो उसका हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद लिखा जाय तो पूर्ण रूप से ज्ञान हो जावेगा।

अप्रैल सन् १९६२ में पुलिस विभाग से रिटायर होने पर इच्छा हुई कि सामवेदी उपनिषदों का अध्ययन किया जावे। पं० श्रीवास पाण्डे जी ने कृपा करके अपना बहुमूल्य समय दिया और केनोपनिषद् की पढ़ाई शुरू की गई। उपनिषद् के गूढ विषय को समझने के लिए मंत्रों के अर्थ करने के लिये यह ज़रूरी था कि मंत्रों का पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ और व्याख्या लिखकर बोध किया जाय। इसीलिए यह शुरू किया गया। शुरू करने के बाद यह समझ में आया कि अगर मंत्रों के अर्थ का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जाय तो ज्यादा समझ में आवेगा; क्योकि मैंने ३२ वर्ष सरकारी पुलिसविभाग में नौकरी करके अंग्रेजी में ही काम किया तथा सब लिखापढ़ी और पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में ही करता रहा। जान पड़ा कि अगर अंग्रेजी में बोला और सोचा जाय तो ज़्यादा बोध होगा। लेहाज़ा प्रयास करके अंग्रेजी अनुवाद भी किया गया। परिश्रम करके उपनिषद् के सब मंत्रों का पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या और अंग्रेजी अनुवाद पं० श्रीवास पाण्डे जी की असीम कृपा से लिखा गया।

कई विद्वानों और महानुभावों ने केनोपनिषद् के अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद किए है। इनमें से अंग्रेजी के अनुवाद जो डाक्टर राधाकृष्णन्, स्वामी गम्भीरानन्द जी, पंडित गयाप्रसाद जी, स्वामी शर्वानन्द जी और श्री अरविन्द ने किए हैं और हिन्दी के अनुवाद जो पं० श्री पाद दामोदर सातबलेकर व स्वामी दयानन्द जी ने किए है समझने और हृदयंगम करने के लिये इस ग्रन्थ में लगा दिये गये हैं।

यह पुस्तक अपने पढ़ने, समझने और मनन करने के लिए स्वान्तः सुखाय लिखी गई थी, परन्तु मेरे कुछ मित्रों ने इसको देखकर आग्रह किया कि लोक-कल्याणार्थ और अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों के लिए इस पुस्तक को छपवा दिया जाय। उन्हीं मित्रों की प्रेरणा और ईश्वर की कृपा का फल है कि यह पुस्तक आप के सामने है।

पं० श्रीवास पाण्डे जी, बी० ए०, एल० एल० बी०, आत्मज श्री पंडित ब्रह्मानन्द जी पाण्डे का जन्मस्थान ग्राम शिवपुरी, जिला राय बरेली है। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपने १९२१ ई० में कानून की परीक्षा पास करके वकालत शुरू की और प्रतापगढ़ तथा लखनऊ में १९४१ ई० तक वकालत करते रहे। सन् १९४१ से आप वकालत छोड़कर बानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपने रामायण, गीता, धर्मशास्त्र, पुराण, वेद और उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन किया है और उनको खूब समझा है। श्रीमद्-भगवद्गीता, यजुर्वेद, योगदर्शन और रामायण तो आपको जबानी याद है।

इस पुस्तक में जो कुछ लिखा है यह श्री पं० श्रीवास पाण्डेय जी की ही कृपा का फल है, मेरा कुछ नहीं है। मेरा ज्ञान तो इतना भी नहीं है कि शुद्ध हिन्दी भी लिख सकूं।

लक्ष्मणपुरी, मातृ नवमी,
आश्विन कृष्ण ९ संवत् २०१९,
२२ सितम्बर सन् १९६२ ई०

आहिताग्नि यमुनाप्रसाद त्रिपाठी,
बी० ए०, आई० पी० एस०

केनोपनिषद् का तात्पर्य

केन उपनिषद् का तात्पर्य यह समझ पड़ता है कि मनुष्य में यह अहंकार-बुद्धि कि मैंने यह किया, यह कर कर सकता हूँ और यह करूँगा इत्यादि अज्ञान और अहंकार के कारण है। सत्य यह है कि परब्रह्म परमात्मा की प्रेरणा से ही मनुष्य सब करता है। उसी की इच्छा से सफलता या असफलता, सम्पत्ति या विपत्ति, यश या अपयश होता है। इस सत्य के ज्ञान की प्राप्ति का उपाय उपासना है। उपास्य परब्रह्म परमात्मा परमानन्द स्वरूप है। इस उपासना को तपस्या, इन्द्रियदमन और कर्म के द्वारा प्राप्त और प्रतिष्ठित किया जा सकता है। कर्म क्या करना चाहिए इसके लिए वेद प्रमाण हैं। वेद समझने के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छः अंगों का ज्ञान आवश्यक है और आप्त वचन का भी जो सत्य के नाम से कहे जाते हैं जैसे इतिहास, पुराण आदि।

केनोपनिषद् का हिन्दी भावार्थ

शांति पाठ

हमारे सभी अङ्ग, वाणी, आँख, कान, शारीरिक, मानसिक एवं बुद्धि आदि बल, सारी इन्द्रियाँ, ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जाँय। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का ही प्रतिपादन करते हैं। भगवान् आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् आप का तिरस्कार न करूँ। उसी प्रकार भगवान् आप भी मुझे भूल न जाँय, मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे और कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप लग जाने पर तथा अपने चित्त के और सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया है वे सब मुझ को प्राप्त हों, सभी मेरे अङ्ग हो जाँय। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

किसकी इच्छा से यानी किसका भेजा हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से मन अपने विषय में जाता है। यह मुख्य, श्रेष्ठ तथा प्रथम प्राण किससे युक्त होकर यानी किसकी प्रेरणा से चलता है। मनुष्य जो इस वाणी को बोलता है, वह किसकी इच्छा से बोलता है, उसका मूल प्रेरक कौन है और वह कौन सा देवता है जो आँख और कान को अपने-अपने विषयों में लगाता है ॥१॥

चूँकि वह परब्रह्म परमात्मा कानों का भी कान है, अर्थात् जिसके बिना विज्ञानात्मा जीव भी नहीं सुन सकता, जो मन का भी मन है अर्थात् जिसके बिना मन भी अपना काम नहीं कर सकता, अवश्य ही वही परब्रह्म परमात्मा वाणी की भी वाणी है, वही प्राणों का प्राण है, और आँखों की आँख है। धैर्यवान् पुरुष अर्थात् जो पुरुष कभी धीरज को नहीं छोड़ते, वे संसार के उपर्युक्त श्रोत्रादि विषयों का ममत्व छोड़ देते हैं। इस बात का अभिमान कभी नहीं करते कि मैं सुनता हूँ, मैं सोचता हूँ इत्यादि अर्थात् जो इन भावनाओं को त्याग देते हैं वे इस संसार से जाने के बाद अर्थात् मरने पर अमर हो जाते हैं ॥२॥

वहाँ अर्थात् उस परब्रह्म परमात्मा तक आँख नहीं जाती। वह आँख का विषय नहीं है। उसको आँख नहीं देख सकती। वाणी की भी गति वहाँ तक नहीं है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। "नेति नेति" कह कर

शान्त हो जाती है। मन भी उसको नहीं सोच सकता, मन से भी वह परे है। न तो उसको हम जानते हैं और न पढ़-लिख कर और न सोच-विचार करके ही जान सकते हैं। हम लोग उसका उपदेश अपने शिष्यों से किस प्रकार से करें, उसको हम नहीं जानते क्योंकि जितना कुछ भी जाना हुआ है वह परब्रह्म परमात्मा उस सबसे कुछ दूसरा ही है एवं वह परब्रह्म परमात्मा जो कुछ नहीं जाना हुआ है, जिसको कोई भी नहीं जानता, उस सब के ऊपर है वह सबसे परे है। जिन महात्माओं ने उस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में हम लोगों को विशेष रूप से समझाया है उन पूर्व पुरुषों से ऐसा ही सुना है ॥३॥

वाणी जिसका कि पूर्णरूप से वर्णन करके पार नहीं पा सकती, इतना ही नहीं वरन् जिसके कारण से वाणी बोली जाती है अथवा यों कहिए कि जो परब्रह्म परमात्मा वाणी को बोलने के लिए विवश करता है उसी को तुम ऐसा समझो कि वह परब्रह्म परमात्मा है तथा संसार में साधारण लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि हम अभी वर्णन कर चुके है ॥४॥

मन के द्वारा संसार के लोग जिसका मनन, संकल्प अथवा निश्चय नहीं करते। विद्वान् लोग मन को उस चैतन्य परब्रह्म परमात्मा के द्वारा विषयीकृत अर्थात् व्याप्त बतलाते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा को तुम परब्रह्म परमात्मा समझो तथा साधारण संसारी लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है ॥५॥

मनुष्य जिस परब्रह्म परमात्मा को आँख से नहीं देख सकते बल्कि जिसके द्वारा मनुष्य इन आँखों के विषय रूप को देखते है उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानों और साधारण मनुष्य जिसको परब्रह्म परमात्मा समझ कर पूजते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है ॥६॥

मनुष्य उस परब्रह्म परमात्मा को कान के द्वारा नहीं सुन सकते बल्कि मनुष्य जिसके द्वारा इस श्रोत्र अर्थात् शब्द को कान के द्वारा सुना हुआ मानते हैं उसी के तुम परब्रह्म परमात्मा जानो तथा साधारण मनुष्य संसार में जिसको परब्रह्म परमात्मा समझते है और जिसकी उपासना करते है वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है ॥७॥

वह मनुष्य प्राण के द्वारा प्राणन क्रिया नहीं करता यानी साँस नहीं लेता अर्थात् गंधवान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त नहीं करता बल्कि जिसके द्वारा प्राण अपनी प्राणन क्रिया यानी साँस लेता है तथा गंध के उपभोग करने के लिए

विवश किया जाता है उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानों और साधारण मनुष्य संसार में जिसकी उपासना परब्रह्म परमात्मा समझ कर करते हैं वह ब्रह्म नहीं है जिसका कि वर्णन किया जा रहा है ॥८॥

द्वितीय खंड

यदि तुम मानते हो कि मै ब्रह्म को भली प्रकार जानता हूँ, तो जो कुछ तुम जानते हो वह सब थोड़ा ही है। इस ब्रह्म के जिस रूप को तुम जानते हो और इसका जो स्वरूप तुम हो और जो देवताओं में है वह तो तुम्हारे लिए विचारणीय ही है। इस प्रकार आचार्य के कहने पर शिष्य ने कुछ सोच विचार करके कहा कि अब मैं ब्रह्म के स्वरूप को जान गया हूँ; ऐसा मै समझता हूँ ॥१॥

मैं यदि इस बात को मानूँ कि मै ब्रह्म को जान गया। यह बात ठीक है यह मै नहीं मानता। और मै यह भी नहीं मानता कि मैं उसको नहीं जानता क्योंकि मै उसको जानता भी हूँ। हम लोगों में से वे जो उसको इस प्रकार समझते हैं कि हम ब्रह्म को जानते हैं, वे ठीक नहीं समझते और जो यह समझते हैं कि हम ब्रह्म को नहीं जानते, वे भी ठीक नहीं समझते। लेकिन जो उसको इस प्रकार से जानते है कि वह ज्ञान के द्वारा जाना नहीं जा सकता; इस प्रकार जो मानते हैं वे ही उसको ठीक जानते हैं ॥२॥

जिसने यह समझा कि मै उस परब्रह्म परमात्मा को जान गया, सचमुच उसने नहीं जाना तथा जिसने उसपर विचार किया और यह समझा कि मैं उसे नहीं जान सका, सचमुच उसी ने परब्रह्म को जाना; क्योंकि वह परब्रह्म परमात्मा ज्ञान से परे है। इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा जिसको लोग समझते हैं कि हम जान गये, उनके लिए वह सचमुच न जाना हुआ ही है और जिन्होंने यह समझा कि हम उसको नहीं जानते वह ज्ञान के परे हैं, सचमुच उन्होंने ही उसे जाना है ॥३॥

प्रत्येक ज्ञान मे जिस ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु का ज्ञान होता है और जिस ज्ञान के विना वस्तु के होते हुए भी ज्ञान नहीं होता उस परब्रह्म परमात्मा को जो मनुष्य ज्ञान स्वरूप ही समझता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है। आत्मा के द्वारा अर्थात् आत्मज्ञान से मनुष्य वीर्य अर्थात् बल और शक्ति को प्राप्त करता हैं। विद्या से तो केवल अमृतत्व प्राप्त करने की शक्ति ही प्राप्त होती है ॥४॥

मनुष्य यदि इस संसार में रहता हुआ मरने के पहले ही उस परब्रह्म परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है कि वह ज्ञानस्वरूप ही है, तब तो ठीक है। उसका कल्याण हो ही गया। परन्तु यदि इस शरीर के रहते हुए मरने के पहले ही उसने इस बात को नहीं जान लिया कि उस परब्रह्म परमात्मा का ऐसा स्वरूप है तब तो उसके लिये यह बड़ी भारी हानि है; क्योंकि उसको बार-बार संसारचक्र में अनेक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। अतः जो धीर पुरुष हैं यानी जो बड़ी-बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी धीरज को नहीं खोते, प्रत्येक प्राणी में, भले बुरे मनुष्यों में, अहिंसक जन्तुओं में तथा घोर हिंसा करने वाले जीवों में, जल-अग्नि आदि पंचभूतों में, सभी चराचर जगत् में उसी एकत्व प्राप्त परब्रह्म को देख लेते हैं अर्थात् प्राप्त कर लेते हैं वे धीर पुरुष इस लोक से अर्थात् इस संसार से मरने के बाद अमर हो जाते हैं ।।५।।

तृतीय खंड

ऐसा कहा जाता है कि देवताओं और असुरों में संग्राम हुआ उसमें परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर की कृपा से देवताओं ने विजय प्राप्त की। फिर उसके बाद ऐसा कहा जाता है कि उस विजय के कारण देवताओं ने उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर को भूल कर ऐसा अर्थात् इस प्रकार अभिमान किया कि यह विजय हम लोगों ने ही प्राप्त की है और जो यह महिमा और गौरव हमने प्राप्त किया है, उसके कारण भी हमी हैं ।।१।।

जब परब्रह्म परमात्मा की कृपा से देवासुर संग्राम में देवता जीत गये, तब देवताओं ने ऐसा समझा, उनको ऐसा अहंकार हो गया कि हम लोगों की यह जो विजय है और उसके कारण हमको जो यह महिमा, यह गौरव प्राप्त हुआ है वह हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हम ही इसके कारण हैं।- इस प्रकार वे भगवान् को भूल गये। परन्तु परब्रह्म परमात्मा को इस बात का पता चल गया कि देवताओं को जो अहंकार हुआ है इसके कारण इनका अधः पतन ही होगा। अतः उन देवताओं के कल्याण के लिए भगवान् ने साकार दृश्यरूप धारण किया और उनके सामने प्रकट हुए। देवताओं ने उस भगवान् के रूप को देखा, कुछ भयभीत हुए और सोचने लगे कि यह तो कोई एक बहुत विशेष पूज्य महात्मा स्वरूप हैं; परन्तु यह न जान सके कि यह कौन हैं ।।२।।

उस अत्यन्त अद्भुत, प्रकाशमान, पूज्य यक्ष को देखकर देवताओं ने अग्नि देव से, जो कि देवताओं के मुखस्वरूप हैं, जो देवताओं के आगे-आगे चलते हैं,

कहा "जातवेद ! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप जाइये और पता लगाइये कि यह जो अद्भुत वस्तु देख पड़ती है, यह क्या है ?" यह सुनकर अग्निदेव ने अहंकारपूर्वक कहा कि बहुत अच्छा अभी जाता हूँ और पता लगाकर आता हूँ ॥३॥

ऐसा कहकर अग्निदेव बड़े वेग से दौड़ कर यक्ष के पास गये। उनको देखते ही यक्ष ने पहले ही पूछा कि आप कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में अग्निदेव ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैं अग्नि हूँ, यह तो सभी लोग जानते हैं। इसके बाद फिर कहा, "मैं जातवेदा हूँ, सर्वज्ञ हूँ" यह भी सब लोग जानते हैं ॥४॥

जब अग्नि ने बड़े गर्व के साथ यह कहा कि मैं अग्नि हूँ तथा सर्वज्ञ जातवेदा हूँ, इस बात को सब लोग जानते हैं, अग्नि के ऐसे बचनों को सुनकर परब्रह्म परमात्माने पूछा कि इस प्रकार प्रसिद्ध जो आप हैं, आपका सामर्थ्य क्या है ? अर्थात् आप में क्या शक्ति है ? इस प्रश्न को सुनकरके अग्निदेव ने उसी प्रकार गर्व से कहा कि पृथ्वी में तथा और भी सभी जगह जो कुछ है उस सबको मैं जलाकर राख कर सकता हूँ ॥५॥

अग्नि के उन बचनों को सुनकर कि "मैं सब कुछ जला सकता हूँ", भगवान् ने उन अग्निदेव के सामने एक तिनका रख दिया और कहा, "भला इस तिनके को तो जला दो", तब अग्निदेव ने उसको जलाने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगा दिया, परन्तु उस तिनके को वे जला न सके। अपनी शक्ति को इस तरह कुंठित हुई देखकर वे बड़े लज्जित हुए और उन परब्रह्म परमात्मा से और कोई बातचीत न करके वहाँ से लौट आये तथा उन देवताओं से कहा कि हम तो उस यक्ष के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सके कि वह कौन है ॥६॥

तब सब देवताओं ने वायु से कहा, "हे वायु देवता ! इस बात का विशेष रूप से पता लगाकर आओ कि यह यक्ष कौन है ?" वायु देवता ने कहा, "बहुत अच्छा, जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही करूँगा" ॥७॥

देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके वायु देव उस यक्ष के पास तेज़ी से दौड़कर गये। यक्ष ने उन वायु देवता को इस प्रकार आया देखकर पूछा, "आप कौन हैं ?" वायु देव ने उत्तर दिया, "मैं वायु हूँ" इस बात को सभी जानते हैं और मैं "मातरिश्वा" भी हूँ, इस बात को भी सब लोग जानते हैं। मैं अन्तरिक्ष लोक में भी चलता रहता हूँ ॥८॥

वायु देव के इस प्रकार उत्तर देने पर यक्ष ने उन वायु देव से फिर यह पूछा, "आप जो इस प्रकार वायु और मातरिश्वा हैं, आप में क्या सामर्थ्य है?" वायु देव ने कहा कि इस पृथ्वी मे जो कुछ भी है, मैं सबको ग्रहण कर सकता हूँ, यानी उड़ा ले जा सकता हूँ ।।९।।

जब वायु देव ने अपने सामर्थ्य का इस प्रकार वर्णन किया, तब यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि भला आप इस तिनके को ही ले लीजिए और उड़ा दीजिए। इस पर वायु देवता ने अपनी सारी शक्ति लगाकर उस तिनके को उड़ाना चाहा, परन्तु उड़ा न सके। इसके बाद वायु देवता ने भी अग्नि की भाँति अधिक जानने का प्रयत्न नहीं किया। वहीं से लौट आये और देवताओं के पास आकर कहा, "वह यक्ष क्या है, यह हम नहीं जान सके" ।।१०।।

जब अग्नि और वायु देव यक्ष का बिना पता लगाए लौट आये, तब सब देवताओं ने मिलकर इन्द्र से कहा कि आप सब देवताओं में श्रेष्ठ और बलवान् हैं, आप ही जाकर यह पता लगाइए कि यह यक्ष कौन है। देवताओं की इस बात को सुनकर इन्द्र महाराज ने कहा, "बहुत अच्छा, हम जाते हैं।" यह कहकर इन्द्र उस यक्ष के पास गये, परन्तु यक्ष उनके सामने से अन्तर्धान हो गया ।।११।।

जब इन्द्र के पहुँचने पर यक्ष अन्तर्ध्यान हो गया, तब इन्द्र देव बड़े आश्चर्य से इधर-उधर देखन लगे, तो देखा कि वहाँ आकाश में एक स्त्री है जो बड़ी शोभावाली है तथा विनय के साथ वे उसके पास गये, तो देखा कि यह तो "उमा" है; जो हिमवान् की पुत्री है अथवा जिसका शरीर सुवर्ण के आभूषण से सुवर्णमय हो रहा है, वही है। इन्द्र देव ने उनसे पूछा कि हे माता, अभी-अभी यहाँ पर जो यक्ष था और जो हमारे आने के बाद ही अन्तर्धान हो गया, आप हमको कृपा करके बता दीजिए कि वह कौन था, हम बड़ी श्रद्धा से आप से यह पूछना चाहते हैं ।।१२।।

चतुर्थ खण्ड

इन्द्र के इस प्रकार विनय के साथ पूछने पर उमा देवी ने कहा कि यह देवासुर संग्राम में जो विजय हुई वह निश्चय करके ब्रह्म की ही हुई है यानी इस विजय के कारण ब्रह्म ही हैं। और आप सब देवताओं को जो यह गौरव

प्राप्त हुआ है यह भी उन्हीं के कारण है। ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र देवता ने इस बात को तभी जाना कि ब्रह्म ही यह यक्ष थे ॥१॥

निश्चय करके यही कारण है कि अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता और सब देवताओं से श्रेष्ठ माने गये हैं; क्योंकि इन्होंने उस यक्ष के पास जा करके उसको पास से देखा, और पहले पहल जाना कि यह यक्ष ब्रह्म है ॥२॥

उसी कारण से निश्चय रूप से मानों ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र और सब देवताओं से बहुत बड़े हो गये; क्योंकि उन्होंने बहुत समीप से उसका स्पर्श किया और पहले पहल यह जाना कि यह यक्ष जो थे वह परब्रह्म परमात्मा ही थे ॥३॥

इस मन्त्र में ऋषि उस परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत यक्ष का निर्देश करते हैं। कहते हैं कि यदि हम उन परब्रह्म परमात्मा का बाहरी इन्द्रियों से संकेत करना चाहें तो ऐसा समझना चाहिए कि जैसे बिजली चमकती है और तत्क्षण अदृश्य हो जाती है उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् बाहरी जगत् के अन्तरतम देश में क्षण भर के लिए जान पड़ता है और फिर बदल सा जाता है। इसी प्रकार दूसरी उपमा से भगवान् का निर्देश इस प्रकार किया जाता है कि जैसे आँखें पलक भाँजती हैं उसी प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और फिर अदृश्य हो जाता है ॥४॥

अधिदैवत यक्ष को दिखलाने के बाद ऋषि कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा को अध्यात्म रूप से, अर्थात् बाहरी इन्द्रियों से काम न लेकर अन्तःकरण से समझना चाहें, तो ऐसे समझना चाहिए कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक बार-बार जाता है और फिर लौट आता है। इसी प्रकार से समझे और एक दूसरे प्रकार से इसको ऐसे समझना चाहिये कि जैसे मनुष्य बार-बार मन ही के द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करता है तथा ये जो संकल्प-विकल्प मन में बार-बार पैदा होते हैं, वे बार-बार मन को परब्रह्म परमात्मा के स्मरण करने को बाध्य करते हैं ॥५॥

ऋषि ने खण्ड एक के चार से आठ मंत्रों तक यह बतलाया है कि साधारण सांसारिक लोग जिस ब्रह्म की उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं हैं, जो मन का भी मन, प्राण का भी प्राण इत्यादि है। इससे लोग यह न समझें कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना ठीक-ठीक हो ही नहीं सकती। अतः ऋषि इसमें उपासना का क्या रूप होना चाहिए, यह दिखलाते हुए कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को वन रूप से समझें अर्थात् वह भगवान् परब्रह्म परमात्मा ऐसे हैं

कि जिनका सम्यक् रूप से अर्थात् अच्छी तरह से भजन करना चाहिए। परम शान्ति देने वाले अर्थात् मननीय वही है। परम शान्ति उन्हीं से मिल सकती है। इस प्रकार जो मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को जानता है उसके प्रति समस्त संसार के प्राणी हिंसा भाव को छोड़ देते है, प्रेम करने लगते है और आशा-विश्वास करते हैं कि यह महात्मा हमारी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है ॥६॥

इस प्रकार उपदेश को सुन करके शिष्य गुरु से फिर पूछता है कि अब आप कृपा करके इस उपनिषद् के गूढ़ रहस्य को बतला दीजिए। यह सुनकर गुरु जी ने कहा कि यह जो अब तक हमने तुमसे उपनिषद् का ज्ञान कहा है यही इसका गूढ़ रहस्य भी है। परन्तु अब हम तुमसे यह बतलाते है कि उस परब्रह्म परमात्मा का जिससे साक्षात् सम्बन्ध है उस उपनिषद् का क्या रहस्य है ॥७॥

उसकी अर्थात् उपनिषद् की प्राप्ति के लिए तपस्या, पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ और मन, इनका दमन और कर्म उसकी प्रतिष्ठा है अर्थात् आधार है अर्थात् आश्रय है। चारों वेद, वेद के सब अंग और सत्य, यह इसके आयतन अर्थात् घर या घेरा है ॥८॥

यह बात निश्चित है कि जो भी मनुष्य इस उपनिषद् को ऋषि अथवा गुरु से कही हुई को ठीक-ठीक वैसी ही समझता है, वह पाप को नष्ट करके अनन्त और सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक अर्थात् ब्रह्मानन्द मे प्रतिष्ठित हो जाता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती ॥९॥

शान्ति पाठ

हमारे सभी अङ्ग, वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक एवं मानसिक बुद्धि आदि का बल और सारी इन्द्रियाँ ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जाँय। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का प्रतिपादन करते हैं। भगवान् आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा यानी आपका तिरस्कार न करूँ अर्थात् आपको भूल न जाऊँ। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवान् आप भी मुझको भूल न जाँय। आप मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे, कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने चित्त का सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया गया है वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अंग हो जाँय। त्रिविध ताप की शांति हो।

THE ESSENCE OF THE KENA UPNISHAD.

The essence of the principles enunciated in the Kena Upnishad is that the belief in man that he is the dœr is due to egotism and ignorance. The truth is that the Brahma or God is the mover of all that a man does. Success, failure, good name, bad name glory and misery of a man are brought about by God according to his actions. This knowledge of truth is achieved by worship. The God to be worshiped is the Brahma who is happiness and glory personified. This worship is to be performed and firmly established by Concentration, Penance, Control of Senses and Actions are to be guided by the principles laid down in the VEDAS, SHASTRAS and PURANAS. In order to acquire true knowledge of the Vedas it is essential to know the Six ANGAS i. e. the six parts of the Vedas which are SIKSHA, KALPA, VYAKARANA, NIRUKTA, CHHAND, and JYOTISH. The SHASTRAS include DARSHANS, MANUSMRITI, traditions and legends .described in the Ramayana, the Mahabharat and the Puranas.

ENGLISH VERSION OF KENOPNISHAD.

SHANTI PATH.

May my limbs, speech, vital force i. e. PRANA, eyes, ears, as also strength and all the organs become fully well developed. What-ever is revealed in the Upnishads relates to Brahma or God. May I not deny Brahma and may not Brahma deny me. Let there be no rejection of Brahma by me and let there be no spurning of me by Brahma. Let there be no spurning, let there be no spurning what-soever of me. May all the virtues that are laid down in the Upnishads repose in me, who, being detached from the world, am engaged in the realisation of self. May they repose in me. May they repose in me.

Om Peace ! Om Peace ! ! Om Peace ! ! !

CHAPTER I.

1. By whose will the directed mind goes towards its object ? Who directs the vital force, that preceeds all and which is the foremost, to proceed towards its duty?. By whose will the speech works that people utter. Who is the effulgent being i. e. God who directs the eyes and ears to function in one particular manner.

2. Since HE i. e. Brahamma is the ear i e. the hearing capacity of the ear, the mind i. e. the thinking capacity of the mind, the speech i. e. the speaking capacity of the speech, the life i. e.

the energy of the life and the eye i. e. the seeing capacity of the eyes. Therefore, the sober and wise men after renouncing this world and after detaching themselves from the senses and their objects become immortal.

3. Neither eye nor speech nor mind goes there. Neither we know nor can we know with all our efforts that the Brahma is such and such. Therefore, we are not aware as to how to give instructions about Brahma. That Brahma is surely different from the known and again it is much above the unknown. Thus we have heard from the ancient teachers who explained Brahma to us.

4. That which is not expressed by the speech but by which the speech is made to express, know that alone to be Brahma and not what people worshsip as an object.

5. That which is not comprehended with the mind but by which the mind is encompassed, know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

6. That which is not seen with the eyes but by which the eyes perceive their object, know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

7. That which is not heard with the ear but by which the sound is heard by the ear, know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

8. That which is not smelt with the organ of smell but by which the organ of smell is made to function, know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

CHAPTER II.

1. If you believe that you know Brahamma well then what you know is only a little expression of Brahma. The little that you know of Brahma, what relationship it has with you and with the Gods ? Therefore, the Brahma is still to be pondered over by you. On hearing this from the teacher the disciple said that he thinks that Brahma is known.

2. I do not believe that we know Brahma well nor do I believe that we do not know Brahma for in fact we do know Brahma. From amongst us he, who thinks that he knows Brahma, is not correct. Similarly he who thinks that he does not know Brahma, too is not correct. One who knows that the Brahma is not a thing to be known, he in fact knows Brahma.

3. He, who has thought over Brahma, knows that he does not know Brahma, but he, who has not pondered over Brahma, thinks that he knows Brahma. Those who are well-versed in knowledge for them Brahma is unknown but for those, who have only little knowledge, Brahma is believed to be known to them.

4. Brahma can be realised with reference to every single act of consciousness. If so realised then

Brahma has been in fact realised. Such a man gets immortality. By the realisation of self he gets all powers. But by all knowledge he gets immortality.

5. If one has known Brahma as such in his life time then he has really achieved the object but if he has not so known Brahma in this very life then he has sustained a very great loss. Therefore, the sober and wise men find Brahma in every single object and having so known, as different from this world, they attain to immortality after this wordly existence.

CHAPTER III.

1. It is said that the Brahma achieved victory for the Devas i. e. Gods and in that victory of the Brahma the Devas became glorious.
2. The Devas were inclined to think that it was their victory and that it were they who had attained glory. Brahma came to know of God's pride. Brahma manifested itself for their benefit but Devas could not know who that venerable Yaksha was.
3. They i. e. the Devas or Gods asked the Fire God, the JATAVEDA, to find out definitely as to who that Yaksha was. The Fire God said that he would do so.
4. The Fire God ran to the Yaksha who asked the Fire God as to who he was. There upon the Fire God said that he was the Fire God, the well-known JATAVEDA i. e. the source of all knowledge.

5. Yaksha asked the Fire God, even if it was so, as to what was the most that he could do. The Fire God asserted that he could burn to ashes all that existed on earth.

6. The Yaksha put a piece of straw before the Fire God and asked him to burn it. The Fire God approached the straw with all swiftness and force at his command but could not burn that piece of straw. There upon the Fire God returned and told the Gods that he could not find out as to who that Yaksha was.

7. The Gods then asked the Air God to find out definitely as to who that Yaksha was and the Air God said that he would do so.

8. Saying this the Air God ran to the Yaksha who asked the Air God as to who he was. There upon the Air God said that he was Air God, the well-known MATARISHWA i. e. one who is always moving in space.

9. The Yaksha asked the Air God, even if it was so, as to what was the most that he could do. The Air God asserted that he could lift and sweep away all that existed on earth.

10. The Yaksha put a piece of of straw before the Air God and asked him to take it up. The Air God approached the straw with all swiftness and force at his command but he could not lift that piece of straw. There upon the Air God returned and told the Gods that he could not find out as to who that Yaksha was.

11. The Gods then asked the powerful Indra to find out definitely as to who that Yaksha was and the Indra said that he would do so. There upon Indra ran to the Yaksha but the Yaksha disappeared from his sight.

12. In that very space Indra came across a woman, the most charming, the Golden Uma or the daughter of the HIMWAN. Indra anxiously asked her as to who that Yaksha was.

CHAPTER IV

1. The same Uma said that surely it was Brahma. It was due to the victory of the Brahma that you Gods became so glorious. It was only then that Indra realised that it was Brahma.

2. Therefore, most certainly, the Fire, Air and Indra Gods, as if, far excel other Gods because they contacted the Yaksha most proximately and they were first to know it as Brahma.

3. For the same reason, most certainly, Indra God far excels the other Gods as he contacted the Yaksha most proximately and he was the first to know that Yaksha as Brahma.

4. In the out-side world bekoning or realisation of Brahma may be compared to the flashes of lightening and twinklings of eyes.

5. And so far as individual self is concerned, the bekoning or realisation of Brahma may be compared to the mind trying to approach Brahma and the individual self concentrating the mind on Brahma again and again.

6. Most certainly the Brahma is happiness and glory personified and the Brahma should be worshipped as such. He who knows Brahma like this is loved by all creatures for he is expected to fulfil all their desires.

7. The disciple asks the teacher to reveal to him knowledge about Brahma. The teacher says that he has already revealed knowledge about Brahma but now he will say as to how to attain it.

8. Penance, control of senses and actions are necessary for acquiring the devine knowledge of Brahmi-Upnishad. It is only on account of these that the Divine knowledge is made stable. The four Vedas, the six Angas or parts of Vedas i. e. Shiksha etc. and the truth i. e. other standard religious literature such as Manusmriti etc. are the abode of the Divine knowledge.

9. Any person who knows the Divine knowledge of Brahmi Upnishad correctly, in the manner discribed here-in, he gets rid of his sins and become firmly established in boundless, blissful and most glorious Brahma. He becomes firmly established; he becomes firmly established.

SHANTI PATH

May my limbs, speech, vital force, eyes, ears as also strength and all the organs become fully well-developed. Whatever is revealed in the Upnishads relates to Brahma. May I not deny Brahma

and Brahma may not deny me. Let there be no rejection of Brahma by me and let there be no spurning of me by Brahma. Let there be no spurning; let there be no spurning whatsoever of me. May all the virtues that are laid down in the Upnishads repose in me, who being detached from the world, am engaged in the realisation of self. May they repose in me. May they repose in me.

Om Peace ! Om Peace !! Om Peace !!!

के

नो

प

के नो प नि ष द्

ष

द्

ओम् तत्सद्ब्रह्मणे नमः

ओम्, तत्, सत्, यह तीनों ब्रह्म के निर्देश हैं यानी ब्रह्म के नाम हैं या ब्रह्म की तरफ संकेत यानी इशारा करनेवाले हैं। गीता के सत्तरहवें अध्याय में २३-२४-२५-२६ व २७ इलोकों में ओम्, तत्, सत् का सूत्ररूप में वर्णन किया गया है। ओम्, तत्, सत् यह तीन प्रकार का जिसका नाम है उस परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है यानी नम्रता के साथ झुककर प्रणाम करता हूँ।

शान्तिपाठ

ओम् आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ओम् शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!

पदच्छेद=ओम्, आप्यायन्तु, मम, अङ्गानि, वाक्, प्राणः, चक्षुः, श्रोत्रम्, अथो, बलम्, इन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं, ब्रह्म, औपनिषदं, मा, अहम्, ब्रह्म, निराकुर्याम्, मा, मा, ब्रह्म, निराकरोत्, अनिराकरणम्, अस्तु, अनिराकरणं, मे, अस्तु।

तदा आत्मनि, निरते, य, उपनित्सु, धर्माः, ते मयि, सन्तु, ते, मयि, सन्तु। ओम् शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति!!!

अन्वय=मम वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम् बलम् इन्द्रियाणि अथो सर्वाणि च अङ्गानि आप्यायन्तु। सर्वं ब्रह्म औपनिषदम् अस्ति। अहम् ब्रह्म मा निराकुर्याम्, ब्रह्म मा मा निराकरोत्, अनिराकरणम् अस्तु, मे अनिराकरणं अस्तु। तदा (तत्) आत्मनि निरते उपनिषत्सु ये धर्माः (सन्ति) ते (धर्माः) मयि सन्तु, ते (धर्माः) मयि सन्तु।

शब्द	अर्थ
ओम्	भगवान् का नाम है।
मम	मेरे
वाक्	वाणी

शब्द	अर्थ
प्राणः	प्राण
चक्षुः	आँख
श्रोत्रम्	कान
बलम्	बल
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ
अथो	तथा, साथ साथ
सर्वाणि	सब
च	और
अंगानि	अंग
आप्यायन्तु	परिपुष्टि हों अर्थात् मजबूत हो जाँय ।
सर्वं	सब
ब्रह्म	ब्रह्म
औपनिषदं	उपनिषद से प्रतिपादित अर्थात् वर्णन किया हुआ ।
(अस्ति)	(है)
अहम्	मैं
ब्रह्म	ब्रह्म को, परब्रह्म परमात्मा को
मा	नहीं
निराकुर्यां	अस्वीकार न करूँ—भूलूँ नहीं ।
ब्रह्म	ब्रह्म, परब्रह्म परमात्मा
मा	मुझको
मा	नहीं
निराकरोत्	अस्वीकार करें, परित्याग करें ।
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना परित्याग न करना
अस्तु	होवे ।
मे	मेरा
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना, परित्याग न करना
अस्तु	होवे ।
तदा	तब
(तत्)	(तब)
आत्मनि	आत्मा में
निरते	निरत होने पर

शब्द	अर्थ
उपनिषत्सु	उपनिषदों में
ये	जो
धर्माः	धर्म
(सन्तु)	(होवें)
ते	वे
(धर्माः)	(धर्म)
मयि	मुझमें
सन्तु	होवें
ते	वे
(धर्माः)	(धर्म)
मयि	मुझ में
सन्तु	होवें ।

भावार्थ—हमारे सभी अङ्ग, वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक मानसिक एवं बुद्धि आदि का बल, सारी इन्द्रियाँ, ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जायँ। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का ही प्रतिपादन करते हैं। भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् आपका तिरस्कार न करूँ या भूल न जाऊँ। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवन्! आप भी मुझे भूल न जायँ, मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने चित्त के और सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया गया है वे सब मुझको प्राप्त हों वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अङ्ग हो जायँ। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

प्राण की व्याख्या—प्राण ने अपने को पाँच प्रकार में विभक्त किया। पहला प्रकार स्वयं प्राण रूप से हुआ जो स्वयं श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रकट हुआ। दूसरी अपान वायु के रूप से प्रकट हुआ जो कि अपना काम मल और मूत्र के विसर्जन की शक्ति के रूप में हुआ। तीसरी व्यान वायु के रूप में हुआ उसको इस प्रकार से समझना चाहिए कि आमाशय में अन्न और मल भरा रहता है। वैश्वानर अग्नि के द्वारा पककर वह मल और अन्न भाप के समान उठता है और सारे शरीर में वायु के रूप में फैलता है। यही व्यान है। नलियों द्वारा

ऊपर उठती हुई वह भाप जब शीतल हो जाती है तब वह चौथी समान वायु का रूप धारण कर लेती है और जो गर्मी थी वह पाँचवी उदान वायु का रूप धारण कर लेती है। 'अन्' धातु है जिसका अर्थ है चलना। इसी धातु से प्राण, अपान, व्यान, समान, और उदान शब्द बने हैं। प्राण केवल श्वास-प्रश्वास नहीं है। प्राण का अर्थ अंग्रेजी में Vital Force किया गया है। इसको जीवन-शक्ति भी कहते हैं।

May my limbs, speech, vital force i.e. PRANA eyes, ears as also strength and all the organs become fully well developed. Whatever is revealed in the Upnishads relates to Brahma or God. May I not deny Brahma and may not Brahma deny me. Let there be no rejection of Brahma by me and let there be no spurning of me by Brahma. Let there be no spurning, let there be no spurning whatsoever of me. May all the virtues that are laid down in the Upanishads repose in me, who, being detached from the world, am engaged in the realisation of self, may they repose in me May they repose in me.

Om, peace ! peace !! peace !!!

ॐ केनेषितं पतित प्रेषितं मनः।
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

पदच्छेद—ओम्, केन, इषितम्, पतति, प्रेषितम्, मनः। केन, प्राणः, प्रथमः, प्रैति, युक्तः। केन, इषिताम्, वाचम्, इमाम्, वदन्ति, चक्षुः, श्रोत्रम्, कः, उ, देवः, युनक्ति ॥१॥

अन्वय—ओम्, केन इषितम् प्रेषितम् मनः पतति, केन युक्तः प्रथमः प्राणः प्रैति। केन इषिताम् इमाम् वाचम् (मनुष्याः) वदन्ति, कः उ देवः चक्षुः श्रोत्रम् (च) युनक्ति ॥१॥

शब्द	अर्थ
ओम्	परमेश्वर का नाम है
केन	किससे
इषितम्	इच्छा किया हुआ, अभीष्ट विषय को (किसकी इच्छा से)

शब्द	अर्थ
प्रेषितम्	भेजा हुआ, प्रेरित किया हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से।
मनः	मन
पतति	(अपने विषय में) गिरता है अर्थात् उसकी ओर जाता है या प्राप्त होता है।
केन	किससे
युक्तः	नियुक्त किया हुआ।
प्रथमः	सबसे श्रेष्ठ, मुख्य, प्रथम
प्राण	प्राण
प्रैति	चलता है।
केन	किससे
इषिताम्	इच्छा की हुई
इमाम्	इस
वाचम्	वाणी को
मनुष्याः	मनुष्य
वदन्ति	बोलते हैं।
कः	कौन
उ	प्रसिद्ध
देवः	देवता
चक्षुः	आँख
श्रोत्रम्	कान
(च)	(और)
युनक्ति	नियुक्त करता है, लगाता है।

भावार्थ—किसकी इच्छा से या किसका भेजा हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से मन अपने विषय में जाता है। यह मुख्य, श्रेष्ठ तथा प्रथम प्राण किससे युक्त (नियुक्त) होकर या किसकी प्रेरणा से चलता है। मनुष्य जो इस वाणी को बोलता है वह किसकी इच्छा से बोलता है, उसका मूल प्रेरक कौन है और वह कौन सा देवता है जो आँख और कान को अपने-अपने विषयों मे लगाता है? ॥१॥

व्याख्या—इस उपनिषद् की शैली कुछ ऐसी समझ पड़ती है कि गुरु अपनी शिष्यमंडली को या उनमें से एक को प्रधान मानकर ब्रह्म का उपदेश कर रहा

है। इस मन्त्र में मन, प्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच अङ्गों का वर्णन आया है। इनमें से चक्षु और श्रोत्र ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं। वाणी कर्म-इन्द्रिय है। मन ज्ञान व कर्म इन्द्रियों का राजा है और प्राण के बिना तो शरीर ही नहीं रह सकता। ज्ञान-इन्द्रियाँ और कर्म-इन्द्रियाँ तथा मन, यह सब सुषुप्ति के समय सो जाते है। उस समय भी प्राण अपना कर्म किया ही करता है। यह प्राण जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओं में बराबर जागरूक रहता है अर्थात् अपना काम किया करता है एवं तुरीय अवस्था तक पहुँचाने का भी प्राण साधक है। इसको (प्रथमः) श्रेष्ठ कहा है। परन्तु मन किसकी इच्छा से और किसका भेजा हुआ किसी विशेष विषय की ओर जाता है ?—यह पहला प्रश्न हुआ। कारण कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि प्राण, वाणी, चक्षु इत्यादि की जितनी क्रियायें है उनका ज्ञान बिना मन के नहीं हो सकता। अन्तःकरणचतुष्टय, (मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त इन चारों) का 'मन' शब्द के द्वारा उपलक्षण होता है।

इस मन्त्र में गुरु शिष्य में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न करने के लिए शिष्य अथवा शिष्यों से जो एक उनमें मुख्य है उससे पूछता है कि यह मन यदि कहीं जाता है तो किसकी इच्छा से जाता है ? अथवा यदि यह बात मानी जाय कि अपनी इच्छा से जाता है तो फिर यह भी देखा जाता है कि न चाहने पर भी मन विवश होकर के पहुँच ही जाता है, तो वह किसके द्वारा विवश किया जाता है ? यह प्रश्न करके फिर गुरु जी पूछते है कि यह जो प्राण सबसे श्रेष्ठ है वह किसके द्वारा किस कारण से चलता रहता है। फिर एक साथ ही यह भी पूछ देते हैं कि यह जो वाणी बोलती है वह किसकी इच्छा से बोलती है और और ये आँख और कान जो है, ये किस देवता से सयुक्त किये जाते है अथवा अपने-अपने विषयों में लगाये जाते हैं। उदाहरण के लिए इस प्रकार समझिये कि जैसे लोग कहते है कि सप्त ऋषियों में अरुन्धती नक्षत्र को ध्यान देकर देखो। इसीप्रकार यह भी कहते है कि ध्यान देकर सुनो। यह इन आँख और कान को उनके विषयों में लगानेवाला कौन देवता है ? देव शब्द या देवता शब्द इसलिए आया सा जान पड़ता है कि मन, प्राण, वाणी, श्रोत्र या कोई भी अपने आप कर्म करने में समर्थ नहीं हैं। किसी देवता से ही प्रेरित होकर यह सब अपना-अपना कर्म करने के लिए विवश किए जाते हैं। जो कुछ संसार में होता है उसका कोई न कोई कर्त्ता अवश्य है। इस न्याय से जो कुछ शरीर में कर्म हो रहा है उसका कर्त्ता या तो जीवात्मा, विज्ञानात्मा हो सकता है या

परब्रह्म परमात्मा हो सकता है। कोई जड़ इसका कारण नहीं हो सकता है। उपलक्षण से यह सिद्ध करेंगे कि वह देवता परब्रह्म परमात्मा ही है।

By whose will the directed mind goes towards its object ? Who directs the vital force that proceeds all and which is the foremost to proceed towards its duty ? By whose will the speech works that people utter ? Who is the effulgent being i.e. God who directs the eyes and ears to function in one particular manner.

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राण-श्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद—श्रोत्रस्य, श्रोत्रम्, मनसः, मनः, यत्, वाचः, ह, वाचम् सः, उ, प्राणस्य। प्राणः, चक्षुषः, चक्षुः, अतिमुच्य, धीराः, प्रेत्य, अस्मात्, लोकात्, अमृताः, भवन्ति ॥२॥

अन्वय—यत्, श्रोत्रस्य, श्रोत्रम् (अस्ति) (यत्) मनसः, मनः (अस्ति), (यत्) ह, वाचः वाचम् (अस्ति) सः, उ, प्राणस्य प्राणः (अस्ति) (तत्) चक्षुषः, चक्षुः (अस्ति), (एवं ज्ञात्वा) धीराः (मनुष्याः) (तत्) अतिमुच्य, अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य, अमृताः, भवन्ति ॥२॥

शब्द	अर्थ
यत्	जो अथवा चूँकि
श्रोत्रस्य	कान का
श्रोत्रं	कान
(अस्ति)	(है)
(यत्)	(जो अथवा चूँकि)
मनसः	मन का
मनः	मन
अस्ति	है,
यत्	जो अथवा चूँकि
ह	ही
वाचः	वाणी का
वाचं	वाणी
अस्ति	है
सः	वह

शब्द	अर्थ
उ	और
प्राणस्य	प्राण का
प्राणः	प्राण
(अस्ति)	है
(तत्)	वह अथवा इसी कारण से
चक्षुषः	आँख का
चक्षुः	आँख
(अस्ति)	(है)
(एवं ज्ञात्वा)	ऐसा जानकर
धीरा	धीर अर्थात् धैर्य वाले
(मनुष्याः)	(मनुष्य)
(तत्)	(उनको अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियों में ममत्व यानी अपनापन)।
अतिमुच्य	त्यागकर
अस्मात्	इस
लोकात्	लोक से
प्रेत्य	मरकर, मर जाने के बाद।
अमृताः	अमर
भवन्ति	हो जाते हैं ॥

भावार्थ—जो अथवा चूँकि वह परब्रह्म परमात्मा कानों का भी कान है अर्थात् जिसके बिना विज्ञानात्मा जीव भी सुन नहीं सकता जो मन का भी मन है अर्थात् जिसके बिना मन भी अपना काम नहीं कर सकता, अवश्य ही वही परब्रह्म परमात्मा वाणी की भी वाणी है, वही निश्चय करके प्राणों का प्राण है और आँखों की आँख है। धैर्यवान् पुरुष अर्थात् जो पुरुष कभी धीरज को नहीं छोड़ते, वे संसार के उपर्युक्त श्रोत्रादि विषयों का ममत्व छोड़ देते है। इस बात का अभिमान कभी नहीं करते कि मैं सुनता हूँ, मैं सोचता हूँ इत्यादि अर्थात् इन भावनाओं को त्याग देते हैं, वे इस संसार से जाने के बाद अर्थात् मरने पर अमर हो जाते हैं ॥२॥

व्याख्या—इस मन्त्र में गुरु जी शिष्यों को बतलाते हैं कि वह देवता जिसका संकेत पहले मन्त्र में किया गया है वह कानों का कान, मन का मन, वाणी की भी

वाणी, प्राण का भी प्राण, और चक्षु का चक्षु है। जो धीर पुरुष ऐसा जानकर संसार को छोड़ता है वह मुक्त हो जाता है।

इस मन्त्र में यह बात स्पष्ट करने के लिए कि वह देवता प्राणों का प्राण है इत्यादि इस प्रकार कहा जाय तो कुछ स्पष्ट हो जाता है कि आँख का जो गोलक है यह आँख नहीं है। इसके अन्दर देखने की शक्ति है जिसके बिना आँख के रहते हुए मनुष्य देख नहीं सकता। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि भीतर दर्शनशक्ति के होते हुए भी कुछ बाहरी प्रकाश का भी साधन हो। बाहरी प्रकाश का सबसे बड़ा प्रकाश देनेवाला सूर्य है जो जीवात्मा के वश में नहीं है। इसलिए स्पष्ट है कि आँख को भी देखने के लिए किसी और शक्ति की आवश्यकता है और वही सचमुच आँख को देखने के लिए रूप की ओर ले जाती है।

Since HE i.e. Brahma is the Ear i.e. the hearing capacity of the ear; the Mind i.e. the thinking capacity of the mind, the Speech i.e. the speaking capacity of the speech, the Life i.e. the energy of the life, and the Eye i.e. the seeing capacity of the eye, therefore the sober and wise men, after renouncing this world and after detaching themselves from the senses and their objects, become immortal.

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥३॥

पदच्छेद—न, तत्र, चक्षुः, गच्छति, नो वाक् गच्छति, न मनः, न विद्मः, नः विजानीमः, यथा, एतत्, अनुशिष्यात्, अन्यत्, एव, तत् विदितात्, अथो, अविदितात्, अधि। इति, शुश्रुम, पूर्वेषाम्, ये, नः, तत्, व्याचचक्षिरे ॥३॥

अन्वय—तत्र चक्षुः न गच्छति, (तत्र) वाक् न गच्छति, नो मनः (तत्र गच्छति), यथा एतद् अनुशिष्यात् (तथा वयं) न विद्मः न विजानीमः; (यतः) तद् विदिताद् अन्यद् एव अथो तद् अवितादाद् अधि (अस्ति)। ये नः तद् व्याचचक्षिरे (तेषां) पूर्वेषाम् इति (वयं) शुश्रुम ॥३॥

शब्द	अर्थ
तत्र	वहाँ
चक्षुः	आँख
न	नहीं
गच्छति	जाती है
(तत्र)	वहाँ
वाक्	वाणी
न	नहीं
गच्छति	जाती है,
नो	नहीं
मनः	मन
तत्र गच्छति	वहाँ जाता है,
यथा	जैसा
एतद्	इसको
अनुशिष्यात्	उपदेश करे
(तथा वयं)	वैसे हमलोग
न	नहीं
विद्मः	जानते हैं।
न	नहीं
विजानीमः	विशेष यत्न करने पर भी नहीं समझते;
(यतः)	चूँकि, इस कारण से कि
तद्	वह (ब्रह्म)
विदिताद्	जाने हुए से
अन्यद्	और दूसरा
एव	ही
अथो	और
तद्	वह (ब्रह्म)
अविदिताद्	न जाने हुए से
अधि	परे, ऊपर
अस्ति	है।
ये	जिन (महात्माओं ने)
नः	हम लोगों से

शब्द	अर्थ
तद्	उस (ब्रह्म के सम्बन्ध में)
व्याचचक्षिरे	व्याख्यान किया था,
तेषां	उन (का)
पूर्वेषाम्	पूर्व पुरुषों का
इति	यह
वयं	हम लोगों ने
शुश्रुम	सुना है।

भावार्थ—वहाँ अर्थात् उस परब्रह्म परमात्मा तक आँख नहीं जाती, वह आँख का विषय नहीं है, उसको आँख नहीं देख सकती। वाणी की भी गति वहाँ तक नहीं है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। "नेति नेति" कहकर शान्त हो जाती है। मन भी उसको नहीं सोच सकता, मन से भी वह परे है। न तो उसको हम जानते हैं और न पढ़-लिख कर और न सोच-विचार करके ही जान सकते हैं। हम लोग उसका उपदेश अपने शिष्यों से किस प्रकार से करें उसको हम नहीं जानते; क्योंकि जितना कुछ भी जाना हुआ है वह परब्रह्म परमात्मा उस सबसे कुछ दूसरा ही है एवं वह परब्रह्म परमात्मा जो कुछ नहीं जाना हुआ है, जिसको कोई भी नहीं जानता उस सबके ऊपर है, वह सबके परे है। जिन महात्माओं ने इस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में हमलोगों को विशेष रूप से समझाया है उन पूर्व पुरुषों से हमने ऐसा ही सुना है ॥३॥

व्याख्या—इस मत्र में गुरु जी अपने शिष्यों से कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को आँख नही देख सकती। आँख की गति वहाँ तक है ही नहीं। वाणी भी उसका वर्णन नहीं कर सकती। मन के लिए भी वह अगम्य है इसलिए उसको हम लोग नहीं जानते और इसी कारण से हम इस बात का वर्णन नहीं कर सकते कि कोई गुरु अपने शिष्य को इसके सम्बन्ध में किस प्रकार समझावे। अभी तक हमने अपने पूर्व आचार्यो से जो सुना है कि वह परब्रह्म परमात्मा, जितनी जानी हुई वस्तुएँ है, उनसे अलग है तथा जो नहीं जानी हुई है उनसे भी वह पृथक् है। इस मन्त्र में केवल चक्षु, वाक् और मन का वर्णन आया है। श्रोत्र और प्राण जो पहले मन्त्र के वर्णन में प्रयुक्त थे उनका इसमें वर्णन नहीं किया गया। इसका कारण यह समझ पड़ता है कि गुरु ने ज्ञानेन्द्रियों में श्रेष्ठ चक्षु को ले लिया और कर्मेन्द्रियों में जो सबसे श्रेष्ठ है उस वाणी को ले लिया। मन इन ज्ञान व कर्मेन्द्रियों का राजा है।

इसलिए उसका भी समावेश हो गया । इस मन्त्र में वाक् शब्द का अर्थ यदि 'श्रुति' वेद ले लिया जाय तो ऐसा अर्थ हो सकता है कि वेद भी उसका वर्णन करते-करते बाद में 'नेति-नेति', वह इतना ही है, ऐसा कहकर शान्त हो जाते हैं ।

Neither eye nor Speech nor mind goes there. Neither we know nor can we know with all our efforts that Brahma is such and such. Therefore, we are not aware as to how to give instructions about Brahma. That Brahma is surely different from the known and again it is much above the unknown. Thus, we have heard from the ancient teachers who explained Brahma to us. 3.

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

पदच्छेद—यत्, वाचा, अनभ्युदितम्, येन, वाक्, अभ्युद्यते । तत्, एव, ब्रह्म, त्वम्, विद्धि, न, इदम्, यत्, इदम्, उपासते ॥४॥

अन्वय—यद् (ब्रह्म) वाचा अभ्युदितं (अस्ति) येन (च) वाग् अभ्युद्यते । त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि, यद् इदम् (लोकः) उपासते (तद्) इदम् ब्रह्म न (अस्ति) ॥४॥

शब्द	अर्थ
यद्	**जो**
ब्रह्मा	**परब्रह्म परमात्मा**
वाचा	**वाणी के द्वारा**
अभ्युदितं	**नहीं कहा गया**
(अस्ति)	**(है)**
येन	**जिसके द्वारा**
(च)	**और**
वाग्	**वाणी**
अभ्युद्यते	**बोलती है या बोली जाती है अथवा बुलवाई जाती है ।**
त्वम्	**तुम**
तद्	**उस**
एव	**ही**

शब्द	अर्थ
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
विद्धि	जानो।
यद्	जो
इदम्	यह
(लोकः)	संसारी लोग
उपासते	उपासना करते हैं
(तद्)	वह
इदम्	यह
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
न	नहीं
(अस्ति)	(है)।

भावार्थ—वाणी जिसका कि पूर्णरूप से वर्णन करके पार नहीं पा सकती। इतना ही नहीं वरन् जिसके कारण से वाणी बोली जाती है अथवा यों कहिए कि वह परब्रह्म परमात्मा वाणी को बोलने के लिए विवश करता है। उसी को तुम ऐसा समझो कि वह परब्रह्म परमात्मा है। तथा संसार में साधारण लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि हम अभी वर्णन कर चुके हैं।

That which is not uttered by speech but by which the speech is revealed, know that alone to be Brahma and not what people worship as an object.

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

पदच्छेद—यत्, मनसा, न, मनुते, येन, आहुः मनः मतम्। तत्, एव, ब्रह्म, त्वम्, विद्धि, न, इदम्, यत्, इदम्, उपासते ॥५॥

अन्वय—यद् (ब्रह्म) मनसा न मनुते येन (च ब्रह्मणः) मनः मतम् (इति) (विद्वांसः) आहुः। तद् एव त्वं ब्रह्म विद्धि इदं यद् (लोकः) उपासते (तद्) इदम्, (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥५॥

शब्द	अर्थ
यद्	जो
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)

शब्द	अर्थ
मनसा	मन के द्वारा
न	नहीं
मनुते	मनन करता है, संकल्प करता है अथवा निश्चय करता है।
येन	जिसके द्वारा
(च ब्रह्मणा)	(और ब्रह्म के द्वारा)
मनः	मन
मतम्	विषयीकृत, व्याप्त
इति	यह
विद्वांसः	विद्वान् लोग
आहुः	कहते हैं
तद्	वह
एव	ही
त्वं	तुम
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
विद्धि	जानो।
इदं	यह
यद्	जिसको
लोकः	संसारी मनुष्य
उपासते	उपासना करते हैं
(तद्)	(वह)
इदम्	यह
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
न	नहीं
(अस्ति)	है।

भावार्थ—मन के द्वारा संसार के लोग जिसका मनन, संकल्प अथवा निश्चय नहीं कर सकते, विद्वान् लोग मन को उस चैतन्य परब्रह्म परमात्मा के द्वारा विषयीकृत अर्थात् व्याप्त बतलाते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा को तुम परब्रह्म समझो तथा साधारण संसारी लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है।

That which can not be comprehended with the mind but by which the mind is encompassed ; know that to be Brahma and not what people worship as an object.

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

पदच्छेद—यत्, चक्षुषा, न, पश्यति, येन, चक्षूँषि, पश्यति, तत्, एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि, न, इदं, यद्, इदम्, उपासते ॥६॥

अन्वय—यद् (कश्चित्) (मनुष्यः) चक्षुषा न पश्यति (तथा) येन (मनुष्यः) चक्षूँषि पश्यति, त्वं तद् एव ब्रह्म विद्धि यद् इदं (मनुष्याः) उपासते (तद्) इदं न (अस्ति) ॥६॥

शब्द	अर्थ
यद्	जिसको
(कश्चित्)	(कोई)
(मनुष्यः)	(मनुष्य)
चक्षुषा	(आँख के द्वारा अर्थात् आँख से
न	नहीं
पश्यति	देखता है,
(तथा)	ऐसे ही या और परन्तु लेकिन)
येन	जिसके द्वारा, जिससे, जिसकी सहायता से
(मनुष्यः)	(मनुष्य)
चक्षूँषि	आँखों के विषय को
पश्यति	देखता है
त्वं	तुम
तद्	उसको
एव	ही
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
विद्धि	जानो।
यद्	जिसकी
इदं	यह
(मनुष्यः)	(मनुष्य लोग)
उपासते	उपासना करते हैं

शब्द	अर्थ
(तद्)	(वह)
इदं	यह
(ब्रह्म)	(परमात्मा परब्रह्म)
न	नहीं
(अस्ति)	है।

भावार्थ—मनुष्य उस परब्रह्म परमात्मा को आँख से नहीं देख सकते। बल्कि जिसके द्वारा मनुष्य इन आँखों के विषय रूप को देखते हैं उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य जिसको परब्रह्म परमात्मा समझकर पूजते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है।

व्याख्या—इस मन्त्र के दूसरे पद में "येन चक्षूँषि पश्यति" पद आया है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जिसके द्वारा आँख देखती है। यहाँ पर 'चक्षूँषि' शब्द बहुवचन और 'पश्यति' शब्द एकवचन है। इसके सम्बन्ध में ऐसा कहा जा सकता है कि यह वचनव्यत्यय आर्ष प्रयोग है। ऐसा प्रयोग आगे चौथे खण्ड के दूसरे मन्त्र में भी आया है। वहाँ पर 'ते' शब्द बहुवचन है और उस शब्द की क्रिया "विदाञ्चकार" एकवचन है।

That which can not be seen with the eye but by which the eyes perceive their object know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदँ श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

पदच्छेद—यद्, श्रोत्रेण, न, शृणोति, येन श्रोत्रम्, इदं, श्रुतम्। तत्, एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि। न इदं, यद्, इदम्, उपासते ॥७॥

अन्वय—यद् (मनुष्यः) श्रोत्रेण न शृणोति (तथा) येन इदम् श्रोत्रम् श्रुतम् (भवति)। तद् एव त्वं (ब्रह्म) विद्धि। यद् इदं (मनुष्यः) उपासते (तद्) इदं (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥७॥

शब्द	अर्थ
यद्	जिसको
(मनुष्यः)	(मनुष्य)
श्रोत्रेण	कान से, कान के द्वारा

शब्द	अर्थ
न	नहीं
शृणोति	सुनता है
(तथा)	(बल्कि)
येन	जिसके द्वारा
इदम्	यह
श्रोत्रम्	कान
श्रुतम्	सुना हुआ
(भवति)	(होता है)
तद्	उसको
एव	ही
त्वं	तुम
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
विद्धि	जानो ।
यद्	जिसकी
इदं	यह
(मनुष्यः)	(मनुष्य)
उपासते	उपासना करता है
(तद्)	(वह)
इदं	यह
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
न	नहीं
(अस्ति)	(है) ।

भावार्थ—मनुष्य जिस परब्रह्म परमात्मा को कान के द्वारा नहीं सुन सकते बल्कि मनुष्य जिसके द्वारा इस श्रोत्र अर्थात् शब्द को कान के द्वारा सुना हुआ मानते हैं उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो तथा साधारण मनुष्य संसार में जिसको परब्रह्म परमात्मा समझते हैं और और जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है ।

That which can not be heared with the ear but by which the sound is heard by the ear ; know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

पदच्छेद—यद्, प्राणेन, न, प्राणिति, येन, प्राणः, प्रणीयते, तद्, एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि, न, इदम्, यद्, इदम्, उपासते ॥८॥

अन्वय—यद् (ब्रह्म) प्राणेन न प्राणिति (परन्तु) येन (ब्रह्मणा) प्राणः प्रणीयते तद् एव त्वं ब्रह्म विद्धि । (तथा) यद् इदम् (मनुष्यः) उपासते (तद्) इदम् (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥८॥

शब्द	अर्थ
यद्	जो
(ब्रह्म)	(ब्रह्म)
प्राणेन	प्राण के द्वारा
न	नहीं
प्राणिति	प्राणन क्रिया करता है, साँस लेता है,
(परन्तु)	(परन्तु)
येन	जिससे
(ब्रह्मणा)	(ब्रह्म के द्वारा)
प्राणः	प्राण
प्रणीयते	ले जाया जाता है
तद्	उसी को
एव	ही
त्वं	तुम
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
विद्धि	जानो ।
(तथा)	(और)
यद्	उस
इदम्	जिसकी
(मनुष्याः)	(मनुष्य)
उपासते	उपासना करते हैं
(तद्)	(वह)
इदम्	यह
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
न	नहीं
(अस्ति)	(है) ।

भावार्थ—वह मनुष्य प्राण के द्वारा प्राणनक्रिया नहीं करता यानी साँस नहीं लेता अर्थात् गंधवान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त नहीं करता बल्कि जिसके द्वारा प्राण अपनी प्राणन क्रिया यानी साँस लेता है तथा गंध के उपभोग करने के लिए विवश किया जाता है उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य संसार में जिसकी उपासना परब्रह्म परमात्मा समझकर करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है जिसका कि वर्णन किया जा रहा है ।।८।।

व्याख्या—खण्ड एक के मन्त्र ४–५–६–७–८ के भाव प्राय: एक से हैं। भेद केवल इन्द्रियों में और शब्दों में है। इसलिए उनके सम्बन्ध में एक ही साथ व्याख्या की जाती है। यह परब्रह्म परमात्मा जिसकी कि साधारण लोग उपासना करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा नहीं ही है। सगुण रूप परब्रह्म परमात्मा को लोग स्नान, चन्दन व धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि प्रकार से पूजते हैं और बाद को वाणी के द्वारा उसकी स्तुति करते है। मन को एकाग्र करके अन्तश्चक्षु के द्वारा ध्यान करते हुए रूप और नाम आदि गुणों का स्मरण करते हुए उपासना करते हैं। परन्तु इन सब बातों से उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना सुचारु रूप से नहीं हो सकती; क्योंकि वाणी यदि बोलती है तो वह उसी परब्रह्म परमात्मा के द्वारा प्रेरित होती है। चक्षु, श्रोत्र, मन, और प्राण यह सब उसी की प्रेरणा से अपना-अपना काम करते हैं। तब वे उस प्रेरक को कैसे जान सकते है ? इस प्रकार इस लौकिक उपासना को गुरु शिष्य से कहता है कि यह पर्याप्त यानी काफी नहीं है ।।८।।

That which is not smelled with the organ of smell but by which the organ of smell is made to function ; know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

द्वितीय खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदिति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य च त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाँस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

पदच्छेद—यदि, मन्यसे, सुवेद, इति, दहरम्, एव, अपि, नूनम्, त्वं, वेत्थ, ब्रह्मणः, रूपं, यद्, अस्य, च, त्वं, यद्, अस्य, देवेषु, अथ, नु, मीमांस्यम्, एव, ते, मन्ये, विदितम् ॥१॥

अन्वय—यदि (त्वं) मन्यसे, (अहम्) (तद्) (ब्रह्म) सुवेद, इति (तद्) (त्वया) (यद्) (ब्रह्म) (ज्ञातम्) (तद्) अपि नूनम् दहरम् (दभ्रम्,) एव (अस्ति) । यद् अस्य ब्रह्मणः रूपं त्वं वेत्थ यद् (च) अस्य ब्रह्मणः (रूपं) त्वं देवेषु वेत्थ (तद्) (अपि) त्वया (ज्ञातम्) (तद्) (दहरम्) (दभ्रम्) (अपि) (नूनम्) (एवं) (अस्ति) अथ ते (तद् ब्रह्म) नु मीमांस्यम् एव अस्ति । (तदा) (शिष्यः) (कथयति) (तद्) (ब्रह्म) विदितम् (इति) (अहम्) मन्ये ॥१॥

शब्द	अर्थ
यदि	अगर
(त्वं)	(तुम)
मन्यसे	मानते हो, समझते हो
(अहम्)	(मैं)
(तद्)	(उस)
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा को)
सुवेद	जान गया, जानता हूँ
इति	यह
(तद्)	(वह)
(त्वया)	तुम्हारे द्वारा
(यद्)	जो
(ब्रह्म)	परब्रह्म परमात्मा
(ज्ञातम्)	जाना गया
(तद्)	वह

शब्द	अर्थ
अपि	भी
नूनम्	निश्चय करके
दहरम्	थोड़ा, सूक्ष्म
(दभ्रम्)	थोड़ा, सूक्ष्म
एव	ही
(अस्ति)	(है) ।
यद्	जो
अस्य	इसका
ब्रह्मणः	परब्रह्म परमात्मा के
रूपं	रूप को
त्वं	तुम
वेत्थ	जानते हो
यद्	जो
(च)	(और)
अस्य	इस
ब्रह्मणः	ब्रह्म के
(रूपं)	रूप को
त्वं	तुम
देवेषु	देवताओं में
वेत्थ	जानते हो
तद्	वह
अपि	भी
(त्वया)	(तुम्हारे द्वारा)
ज्ञातम्	जाना गया
(तद्)	(वह)
(दहरम्)	(थोड़ा)
(दभ्रम्)	(थोड़ा)
(अपि)	(भी)
(नूनम्)	(निश्चय करके)
(एव)	(ही)
अस्ति	है ।

शब्द	अर्थ
अथ	इसलिए
ते	तुम्हारे लिए
(तद् ब्रह्म)	(वह परब्रह्म परमात्मा)
नु	निश्चय करके, भी
मीमाँस्यम्	विचारणीय
एव	ही
अस्ति	है।
(तदा)	(तब)
(शिष्यः)	(शिष्य)
(कथयति)	(कहता है)
(तद)	(वह)
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
विदितम्	ज्ञात हुआ
(इति)	(यह)
(अहम्)	(मैं)
मन्ये	मानता हूँ।

भावार्थ—यदि तुम मानते हो कि मैं ब्रह्म को भली प्रकार जानता हूँ तो जो कुछ तुम जानते हो वह सब थोड़ा ही है। इस ब्रह्म के जिस रूप को तुम जानते हो और इसका जो स्वरूप तुम हो और जो देवताओं में है, वह तो तुम्हारे लिए विचारणीय ही है। इस प्रकार आचार्य के कहने पर शिष्य ने कुछ सोच-विचार करके कहा कि अब मैं ब्रह्म के स्वरूप को जान गया हूँ, ऐसा मैं समझता हूँ।

व्याख्या—इस खण्ड में केवल पाँच मंत्र है तथा पहले चार का विषय बहुत गम्भीर जान पड़ता है। पहले मंत्र में 'दहरमेव' और 'दभ्रमेव' इस प्रकार दो पाठ है, भाव दोनों का एक ही है। इस मंत्र में गुरू जी शिष्यों से यह समझाकर कहते हैं कि संसार में साधारणतया लोग इस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में उचित रीति से विचार नहीं करते। समझते है कि विचार करने की बात ही क्या है। वह परब्रह्म परमात्मा अनादि है, अनन्त है और सर्वत्र है इत्यादि।

गुरुजी सावधान करते हुए कहते हैं कि जो समझते हैं कि भगवान् ऐसे

हैं, यह उनका ज्ञान बहुत थोड़ा है। कुछ और विशेष विचार करने की आवश्यकता है। भगवान् के जिस स्वरूप को लोग देखते है और देवताओं में जिस प्रकार वे परब्रह्म परमात्मा की उपासना करते हैं, उसके सम्बन्ध में कुछ और भी विचार करने की आवश्यकता है। इतना सुनकर शिष्य ने समझा और कहा कि मैंने उस ब्रह्म का रूप समझा।

इस मन्त्र में कुछ भाव ऐसा भी समझ में आता है कि गुरु शिष्य से इस प्रकार कहते हैं कि तुम उस परब्रह्म परमात्मा के किस प्रकार के अंश हो और देवताओं में उन परब्रह्म परमात्मा का कौन सा स्वरूप विद्यमान है ?—इसको तो अभी विचार करना ही है अर्थात् जीव और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है।

इस मन्त्र में संभवतः कुछ इस बात का संकेत किया जाता है कि तुम भोक्ता हो और पंचभूत पंच तन्मात्रा आदि तथा परब्रह्म परमात्मा का क्या सम्बन्ध है। संभवतः गुरु श्वेताश्वतर-उपनिषद् के प्रथम अध्याय के १२ मन्त्र 'भोक्ता भोग्यम् प्रेरितारम् च मत्वा सर्व प्रोक्तं त्रिविधम् ब्रह्म चैतत्' अर्थात् इसका भाव ऐसा समझ पड़ता है कि भोक्ता भोगने वाला भोग्य जिसका भोग किया जाता है और इन दोनों का एक दूसरे से सम्बन्ध कराने वाला जो प्रेरक है, यह सब तीनों मिल करके ब्रह्म ही है, उससे परे नहीं है।

If you believe that you know Brahma well then what you know is only u little expression of Brahma. The little that you know of Brahma what relationship it has with you and with the gods. Therefore the Brahma is still to be pondered over by you. On hearing this From the teacher, the disciple said that he thinks that Brahma is known.

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

पदच्छेद—न, अहम् , मन्ये, सुवेद, इति, नो, न, वेद, इति, वेद, च यो, नः, तत् , वेद, तद् , वेद, नो, न, वेद, इति वेद च ॥२॥

अन्वय—अहम् (तद्) (ब्रह्म) सुवेद इति (अहम्) न मन्ये (अहम्) (तत्) (ब्रह्म) न वेद इति नो (अहम्) (मन्ये) (यतः) च (तत्) (ब्रह्म) (अहम्) वेद। नः यः तत् (ब्रह्म) वेद (सः) (तद्) (ब्रह्म) वेद नो (तत्) (ब्रह्म) न वेद इति (सः) तत् (ब्रह्म) वेद च ॥२॥

शब्द	अर्थ
अहम्	मैं
(तत्)	(उस)
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा को
सुवेद	अच्छी तरह से जानता हूँ
इति	यह
(अहम्)	(मैं)
न	नहीं
मन्ये	मानता हूं ।
(अहम्)	(मैं)
(तत्)	उस
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
न	नहीं
वेद	जानता हूं
इति	यह
नो	नहीं
(अहम्)	(मैं)
(मन्ये)	(मानता हूं)
(यतः)	(इसलिए कि)
च	और
(तत्)	(उस)
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
(अहम्)	(मैं)
वेद	जानता हूं ।
नः	हमलोगों में से
यः	जो कोई
तत्	इस प्रकार
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा को
वेद	जानता हूं
(सः)	(वह)
(तत्)	(उस)
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)

शब्द	अर्थ
वेद	जानता हूं
नो	नहीं
(तत्)	(उस)
ब्रह्म	ब्रह्म को
न	नहीं
वेद	जानता हूं
इति	यह
सः	वह
(तत्)	(उस)
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
वेद	जानता है
च	और।

भावार्थ—मै यदि इस बात को मानूं, कि मैं ब्रह्म को जान गया, यह बात ठीक है यह मै नही मानता। और मैं यह भी नहीं मानता कि मैं उसको नहीं जानता क्योंकि मैं उसको जानता भी हूँ। हमलोगों में से वे जो उसको इस प्रकार समझते हैं कि हम ब्रह्म को जानते हैं, वे ठीक नहीं समझते और जो यह समझते हैं कि हम ब्रह्म को नहीं जानते वे भी ठीक नहीं समझते लेकिन जो उसको इस प्रकार जानते है कि वह ज्ञान के द्वारा जाना नहीं जा सकता और इस प्रकार जो मानते हैं, वे ही उसको सही जानते है।

व्याख्या—यह जो दूसरा मन्त्र है इसकी पदावली बहुत कुछ एक ही तरह की है। इस मन्त्र में गुरु शिष्य-मंडली से कहते हैं कि यदि कोई कहे कि हमें उस परब्रह्म परमात्मा को अच्छी तरह से जानते हैं, तो यह बात यथार्थ नहीं है। मै इसको नहीं मानता और यदि कोई कहे कि मैं उसको नहीं जानता, यह भी मै मानने को तैयार नहीं हूँ; क्योंकि कम से कम वह इतना तो जानता ही है कि मै उसे नहीं जानता। इसलिए गुरु अथवा शिष्य-मंडली अथवा सभी लोग यदि इस प्रकार से परब्रह्म परमात्मा को समझें कि वह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और सब कर्मेन्द्रियों से, यहाँ तक कि जो मन और बुद्धि के भी परे हैं, उसको वह समझ नहीं सकता। इस तरह जो समझता है, वही उस परब्रह्म परमात्मा को जानता है और जो इसको इस प्रकार से नहीं जानता, वह यह समझते हुए भी कि वह जानता है, नहीं जानता।

I do not believe that we know Brahma well. Nor do I believe that we do not know Brahma, for in fact, we do know Brahma. From amongst us he, who thinks that we know Brahma, is not correct, similarly he, who thinks that he does not know Brahma, too is not correct. One who knows that the Brahma is not a thing to be known, he in fact knows Brahma.

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।।३।।

पदच्छेद—यस्य, अमतम्, तस्य, मतम्, मतम्, यस्य, न, वेद, सः। अविज्ञातम्, विजानताम्, विज्ञातम्, अविजानताम् ।।३।।

अन्वय—यस्य (तत्) (ब्रह्म) अमतम् (अस्ति) तस्य (तत् ब्रह्म) मतम् (अस्ति) यस्य (तत् ब्रह्म) मतम् (अस्ति) सः (तत् ब्रह्म) न वेद। (तत् ब्रह्म) विजानताम् (तत् ब्रह्म) अविज्ञातम् (अस्ति) (तत् ब्रह्म) अविजानताम् (तत् ब्रह्म) विज्ञातम् (अस्ति) ।।३।।

शब्द	अर्थ
यस्य	जिसका
(तत्)	(वह)
(ब्रह्म)	(ब्रह्म)
अमतम्	न जाना हुआ
(अस्ति)	(है)
तस्य	उसका
(तत् ब्रह्म)	(वह ब्रह्म)
मतम्	जाना हुआ
(अस्ति)	(है)
यस्य	जिसका
(तद् ब्रह्म)	(वह ब्रह्म)
मतम्	जाना हुआ
(अस्ति)	(है)
सः	वह
(तद् ब्रह्म)	(उस ब्रह्म को)
न	नहीं

शब्द	अर्थ
वेद	**जानता है**
यतः	**क्योंकि**
(**तत्**)	(**उस ब्रह्म को**)
विजानताम्	**जानने वाले के लिए**
(**तत् ब्रह्म**)	(**वह ब्रह्म**)
अविज्ञातम्	**न जाना हुआ**
(**अस्ति**)	**है**
(**तत् ब्रह्म**)	(**उस ब्रह्म को**)
अविजानताम्	**जो नहीं जानते उनका**
(**तत्**)	(**वह**)
(**ब्रह्म**)	(**ब्रह्म**)
विज्ञातम्	**जाना हुआ**
(**अस्ति**)	(**है**) ।

भावार्थ—**जिसने यह समझा कि मैं परब्रह्म परमात्मा को जान गया, सचमुच उसने नहीं जाना और जिसने उस पर विचार किया और यह समझा कि मै उसे नहीं जान सका, सचमुच उसी ने परब्रह्म परमात्मा को जाना; क्योंकि वह परब्रह्म परमात्मा ज्ञान से परे है। इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा जिसको लोग समझते है कि हम जान गये, उनके लिए वह सचमुच न जाना हुआ ही है और जिन्होंने यह समझा कि हम उसको नहीं जानते, वह ज्ञान के परे हैं, सचमुच उन्होंने ही उसे जाना।**

मनन—यह मन्त्र दूसरे मन्त्र को विशेष रूप से स्पष्ट करता है। ~~तीसरे~~ और चौथे पद से भाव आसानी से समझ में आता है। 'विजानताम्' के दो अर्थ हो सकते हैं :—एक यह कि विशेष करके जो जानता है अथवा जो नहीं जानता अर्थात् वह परब्रह्म परमात्मा उन लोगों के लिए अज्ञात अर्थात् न जाना हुआ है जो कि अज्ञानी है अथवा जो विशेष रूप से जानते है, वे समझते हैं कि परब्रह्म परमात्मा अविज्ञात ही है अर्थात् न उसको किसी ने अभीतक जाना है और न आगे ही जान सकता है। चौथे पद का भी ऐसा ही भाव समझा जा सकता है। इसी प्रकार पहले पद का अर्थ यह है कि जिसने परब्रह्म परमात्मा को इस प्रकार समझ लिया कि वह जाना नही जा सकता, उसने उसको जान लिया और जिसने जाना कि मैंने जान लिया, उसने जाना ही नहीं।

He, who has thought over Brahma, knows that he does not know Brahma, but he, who has not pondered over Brahma, thinks that he knows Brahma. Those who are well versed in knowledge, for them Brahma is unknown, but for those, who have only little knowledge, Brahma is believed to be known to them.

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥

पदच्छेद—प्रतिबोधविदितम्, मतम्, अमृतत्वम्, हि, विन्दते। आत्मना, विन्दते, वीर्यम्, विद्यया, अमृतम् ॥४॥

अन्वय—(येन तत् ब्रह्म) प्रतिबोधविदितम् (इति) मतम् (सः) हि अमृतत्वम् विन्दते। (सह) आत्मना वीर्यं विंदते विद्यया (च) अमृतम् (विंदते) ॥४॥

शब्द	अर्थ
येन	जिसने
तद् ब्रह्म	उस ब्रह्म को
प्रतिबोधविदितम्	(बोधं बोधं प्रति विदितं भवति) अर्थात् प्रत्येक बोध अर्थात् ज्ञान में जो जाना हुआ होता है अथवा जिसके द्वारा प्रत्येक ज्ञान का बोध होता है।
इति	इस प्रकार
मतम्	समझा
सः	वह
हि	निश्चय करके
अमृतत्वम्	अमृतत्व
विन्दते	प्राप्त होता है
सः	वह
आत्मना	आत्मा के द्वारा
वीर्यं	वीर्य को अर्थात् बल और शक्ति को
विन्दते	प्राप्त करता है।
विद्यया	विद्या से
(च)	और

शब्द	अर्थ
अमृतम्	अमृत को अर्थात् अज्ञानान्धकार को निवृत्त करने के सामर्थ्य को
(विन्दते)	(प्राप्त करता है) ।

भावार्थ—प्रत्येक ज्ञान में, जिस ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु का ज्ञान होता है और जिस ज्ञान के बिना वस्तु के होते हुए भी ज्ञान नहीं होता, उस परमात्मा को जो मनुष्य ज्ञानस्वरूप ही समझता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है। आत्मा के द्वारा अर्थात् आत्मज्ञान से मनुष्य वीर्य अर्थात् बल यानी शक्ति को प्राप्त करता है। विद्या से तो केवल अमृतत्व प्राप्त करने की शक्ति ही प्राप्त होती है ॥४॥

व्याख्या—यह मन्त्र उस परब्रह्म परमात्मा को विशेष रूप से समझाने का प्रयत्न करता है। मन्त्र इस प्रकार समझाने का प्रयत्न करता है कि मनुष्य को अनेक प्रकार का ज्ञान होता है जैसे मै मनुष्य हूँ, ब्राह्मण हूँ, वह क्षत्रिय है, वह वैश्य है इत्यादि इत्यादि। इसमें कुछ ज्ञान का विषय है, कोई ज्ञाता है और कुछ ज्ञान है। ज्ञाता और विषय में भेद है, परन्तु ज्ञान सब में एक ही है। उस ज्ञान के बिना न तो कोई ज्ञाता अपने को जान सकता है और न किसी विषय को ही जान सकता है। ज्ञान में भी कुछ तारतम्य है अर्थात् कमी वेशी है। ज्ञान में कहीं कमी है और कहीं अधिकता है, परन्तु ज्ञान एक ही वस्तु है। जैसे प्रकाश चाहे सूर्य का हो, चाहे एक दीपक का हो, चाहे लीन होती हुई किसी चिनगारी का हो। उसी प्रकार ज्ञान में एकत्व है। उस विषय के ज्ञान के द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा का कुछ आभास मिलता है। प्रत्येक ज्ञान में उसी की आभा दीख पड़ती है। जैसा ~~कि~~ गुरु ने अपने शिष्यों को समझाया है कि जो भगवान् को प्रत्येक ज्ञान में समझ सकता है, जान सकता है और देख सकता है वह उसको जानता है। इस तरह जिसने भगवान् को समझ लिया, उसने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया। जिसको ऐसा ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान प्राप्त हो गया, वह समर्थ हो गया। अब इसके बाद विद्या के द्वारा वह अमृत को प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञान से मनुष्य में धैर्य आदि गुणों की प्राप्ति होती है जिनसे कि वह संसार में इस लोक और परलोक और वेद के सभी अंगों को जान लेता है और संसार के यथार्थ रूप को जान कर परमपद को भी जान लेता है। जो लोक को नहीं जानता अर्थात् जो लोकव्यवहार में निपुण नही है, वह चाहे जितना बड़ा श्रोत्रिय

हो, ब्रह्मनिष्ठ हो वह अधूरा ही है और जो लोकव्यवहार में अत्यन्त निपुण है, वेद को नहीं जानता, ब्रह्मनिष्ठा को भी नहीं जानता कि क्या वस्तु है, उसके बावत तो कुछ कहना ही नहीं है ! वह शोचनीय है ।

Brahma can be realised with reference to every single act of consciousness. If so realised, then Brahma has been, in fact, realised. Such a man gets immortality. By the realisation of self, he gets all powers, but by all knowledge he gets immortality.

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

पदच्छेद—इह, चेत्, अवेदीत्, अथ, सत्यम्, अस्ति, न, चेत्, इह, अवेदीत्, महती, विनष्टिः । भूतेषु, भूतेषु, विचित्य, धीराः प्रेत्य, अस्मात्, लोकात्, अमृताः भवन्ति ॥५॥

अन्वयः—(मनुष्यः) चेत् इह (एव) अवेदीत् अथ (तत्) सत्यम् अस्ति (सः) चेत् इह (एव) न अवेदीत् (ततः) (तस्य) महती विनष्टिः (भवति) (अतः) धीराः भूतेषु भूतेषु (तत् ब्रह्म) विचित्य अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृताः भवन्ति ॥५॥

शब्द	अर्थ
(मनुष्यः)	(मनुष्य)
चेत्	यदि
इह	इस संसार में
(एव)	(ही)
अवेदीत्	जान लिया
(अथ)	(तब तो)
तत्	वह
सत्यम्	ठीक, सत्य
अस्ति	है
सः	उसने
चेत्	यदि
इह	इस संसार में
एव	ही
न	नहीं

शब्द	अर्थ
अवेदीत्	जान लिया
ततः	तब
तस्य	उसकी
महती	बहुत बड़ी
विनष्टिः	हानि
भवति	होती है।
(अतः)	(इसलिए)
धीराः	बुद्धिमान् अर्थात् धीर मनुष्य
भूतेषु भूतेषु	प्रत्येक प्राणी और भूतों में
(भूत	पंच भूत, जितनी संसार में वस्तुयें हैं वे सब)
तत् ब्रह्म	उस परब्रह्म परमात्मा को।
विचित्य	विशेष रूप से ढूंढ़ कर प्राप्त कर लेते हैं।
अस्मात्	इस
लोकात्	लोक से
प्रेत्य	मर कर
अमृताः	अमर
भवन्ति	हो जाते हैं।

भावार्थ—मनुष्य यदि इस संसार में रहता हुआ मरने के पहले ही उस परब्रह्म परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है कि वह ज्ञान स्वरूप ही है, तब तो ठीक है। उसका कल्याण हो ही गया। परन्तु यदि इस शरीर के रहते हुए मरने के पहले ही उसने इस बात को नहीं जान लिया कि उस परब्रह्म परमात्मा का ऐसा स्वरूप है, तब तो उसके लिए यह बड़ी भारी हानि है क्योंकि उसको बार-बार संसारचक्र में अनेक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। अतः जो धीर पुरुष हैं, जो बड़ी-बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी धीरज को नहीं खोते प्रत्येक प्राणी में, भले-बुरे मनुष्यों में, अहिंसक जन्तुओं में तथा घोर हिंसा करने वाले जीवों में, जल अग्नि आदि पंचभूतों में, सभी चराचर जगत में उसी एकत्वप्राप्त परब्रह्म को देख लेते हैं अर्थात् प्राप्त कर लेते हैं, वे धीर पुरुष इस लोक से अर्थात् इस संसार से मरने के बाद अमर हो जाते हैं।

व्याख्या—इस मन्त्र में गुरु इस बात पर अधिक बल देते हैं कि इस जीवन में ही जो कुछ जान ले, वही सचमुच सत्य है और यदि इस जीवन में न जान

सका, तो उसका यह जन्म व्यर्थ हो गया। अन्त में यह कहते हैं कि मनुष्य धीरज के साथ प्रत्येक भूत में अर्थात् प्राणी जीवमात्र में, पंचभूतों में और उनके सभी विकारों में उस परब्रह्म परमात्मा को विशेष रूप से देखे, अलग करे। जितने भूत हैं, जितने प्राणी हैं, जो कुछ भी हैं, उनमें से अनित्य वस्तुओं को निकाल कर जो वस्तु नित्य है और सभी में ओत-प्रोत है अर्थात् सब में भीतर-बाहर भरा हुआ है, उसको देख ले। वह इस संसार से मरकर भी अमर हो जाता है।

If one has known Brahma as such in his life-time, then he has really achieved the object; but if he has not so known Brahma in this very life, then he has sustained a very great loss. Therefore, the sober and wise men find Brahma in every single object and having so known as different from this world, they attain immortality after this worldly existance.

तृतीय खण्ड

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ॥१॥

पदच्छेद—ब्रह्म, ह, देवेभ्यः, विजिग्ये, तस्य, ह, ब्रह्मणः, विजये देवाः अमहीयन्त ॥१॥

अन्वय—ह, ब्रह्म, देवेभ्यः, विजिग्ये, (ततः) ह, तस्य, ब्रह्मणः, विजये, देवाः अमहीयन्त ॥१॥

शब्द	अर्थ
ह	ऐसा कहा जाता है। यह बात प्रसिद्ध है।
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा ने
देवेभ्यः	देवताओं के लिए
विजिग्ये	विजय प्राप्त की
ततः	तब
ह	ऐसा कहा जाता है
तस्य	उस
ब्रह्मणः	परब्रह्म परमात्मा के
विजये	विजय में अर्थात् विजय के कारण।
देवाः	देवताओं ने
अमहीयन्त	गौरव को प्राप्त किया, पूज्य हुए।

भावार्थ—ऐसा कहा जाता है कि देवताओं और असुरों में देवासुर-संग्राम हुआ। उसमें परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर की कृपा से देवताओं ने विजय प्राप्त की। फिर उसके बाद ऐसा कहा जाता है कि उस विजय के कारण देवताओं ने उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर को भूल कर ऐसा अर्थात् इस प्रकार अभिमान किया कि यह विजय हम लोगों ने ही प्राप्त की है और जो यह महिमा और गौरव हमने प्राप्त किया है, उसके कारण भी हमी हैं।

व्याख्या—इस तीसरे खण्ड में कुछ आख्यायिका के रूप में मन्त्र या उपनिषद् उपदेश कर रहा है। इसमें देवताओं की विजय, उसके कारण से उनका अभिमान और ब्रह्म द्वारा उस अभिमान का निराकरण किया गया है।

कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि शरीर में सुप्रवृत्ति और कुप्रवृत्ति भगवान् के प्रति रुझान अथवा कामनाओं के प्रति मन का झुकान, यही दो बातें संसार में देखी जाती हैं। मन बुद्धि से प्रेरित होकर इन्द्रियो को अपने वश में करने का प्रयत्न करता है। यही जीव की विजय है और जब मन विषय प्रेमी इन्द्रियों के वश में होकर कर्म करता है, तब यही जीव की हार होती है। जीव की प्रवृत्ति जब भगवान् की ओर होती है, तब उसकी विजय होती है। पर जीव की प्रवृत्ति के कारण वही परब्रह्म परमात्मा है। जीव का यह अभिमान कि हमने मन इत्यादि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है; उस अभिमान का नाश हो जाने से पतित होने से यह बच जाता है। कुछ ऐसा भाव सा जान पड़ता है।

ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की; परन्तु उसके कारण जो महिमा देवताओं की हो गई, उसके कारण केवल ब्रह्म ही थे, देवता नहीं थे। यद्यपि महिमा उनकी हो गई।

It is said that Brahma achieved victory for the Devas and in that victory of the Brahma the Devas become glorious.

त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति। तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥२॥

पदच्छेद—ते, ऐक्षन्त, अस्माकम्, एव, अयम्, विजयः, अस्माकम् एव, अयम्, महिमा, इति। तत्, ह, एषाम्, विजज्ञौ, तेभ्यः, ह, प्रादुर्बभूव, तत्, न, व्यजानत, किम्, इदम्, यक्षम्, इति ॥२॥

अन्वय—ते (देवाः) अयम् विजयः अस्माकम् एव अस्ति अयम् महिमा (अपि च) अस्माकम् एव (अस्ति) इति ऐक्षन्त। (तत् ब्रह्म) ह तत् एषाम् (देवानाम् मिथ्याऽहंकाररूपम् अभिप्रायम्) विजज्ञौ (तत्) ह (ब्रह्म) तेभ्यः (देवेभ्यः) प्रादुर्बभूव (देवाः) (तत्) इदम् यक्षम् किम् (अस्ति) इति न व्यजानत ॥२॥

शब्द	अर्थ
ते	**वे**
(देवाः)	**(देवता)**
अयम्	**यह**
विजयः	**विजय**

शब्द	अर्थ
अस्माकम्	हमारी
एव	ही
अस्ति	है
अयम्	यह
महिमा	बड़पन
(अपि)	(भी)
(च)	और
अस्माकम्	हमारी
एव	ही
(अस्ति)	(है)
इति	यह
ऐक्षन्त	जाना समझा।
(तद् ब्रह्म)	उस ब्रह्म ने
ह	ऐसा कहा जाता है
तत्	उस
एषाम्	इन
(देवानाम्)	(देवताओं के)
(मिथ्याअहंकार-रूपम् अभिप्रायम्)	(मिथ्या अहंकार रूप अभिप्राय का)
विजिज्ञौ	जान लिया।
(तत्)	(वह)
ह	ऐसा कहा जाता है
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
तेभ्यः	उनके लिए
(देवेभ्यः)	(देवताओं के लिए)
प्रादुर्बभूव	प्रकट हो गया।
(देवाः)	(देवताओं ने)
तत्	उसको
इदम्	यह
यक्षम्	यक्ष
किम्	कौन

शब्द	अर्थ
(अस्ति)	(है)
न	नहीं
व्यजानत	जाना ।

भावार्थ—जब परब्रह्म परमात्मा की कृपा से देवासुर-संग्राम में देवता जीत गये, तब देवताओं ने ऐसा समझा, उनको ऐसा अहंकार हो गया कि हमलोगों की यह जो विजय है और उसके कारण हमको जो यह महिमा, यह गौरव प्राप्त हुआ है, वह हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हम ही इसके कारण हैं ! इस प्रकार वे भगवान् को भूल गये, परन्तु परब्रह्म परमात्मा को इस बात का पता चल गया कि देवताओं को जो अहंकार हुआ है इसके कारण इनका अधःपतन ही होगा। अतः उन देवताओं के कल्याण के लिए भगवान् ने साकार दृश्य रूप धारण किया और उनके सामने प्रकट हुए। देवताओं ने उस भगवान् के रूप को देखा, कुछ भयभीत हुए और सोचने लगे कि यह तो कोई एक बहुत विशेष पूज्य महात्मा स्वरूप है, परन्तु यह न जान सके कि यह कौन हैं।

व्याख्या—उन देवताओं ने यह सोचा कि यह विजय हमारी ही हुई है और यह महिमा भी हमारी ही है। इसमें श्रेय हम लोगों को है। हम ही सबके कारण हैं। वे भगवान् को भूल गये। कहा जाता है कि परब्रह्म परमात्मा इस बात को जान गये। अतः उनके घमण्ड को दूर करने के लिए, उनके कल्याण के लिए, वे एक अत्यन्त, अद्भुत यक्ष के रूप में प्रकट हुए। देवताओं ने देखा कि यह तो कोई विचित्र परमपूज्य वस्तु है, परन्तु यह क्या है, यह न जान सके और उनकी जानने की आकांक्षा बढ़ी।

The Devas were inclined to think that it was their victory ~~and it~~ were they who have attained glory. Brahma came to know of God's pride. Brahma manifested itself for their benefit but the Devas could not know who that Venerable Yaksha was.

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥३॥

पदच्छेद—ते, अग्निम्, अब्रुवन्, जातवेद, एतत्, विजानीहि, किम् इदम्, यक्षम्, इति, तथा, इति ॥३॥

अन्वय—ते, (इन्द्रप्रमुखाः देवाः) अग्निम् अब्रुवन् (हे) जातवेद इदम् यक्षम् किम् (अस्ति) इति एतत् विजानीहि। (तदा) (अग्निः) (तान्) (देवान्) तथा (अस्तु) इति (अब्रवीत्) ॥३॥

शब्द	अर्थ
ते	उन्होंने
(इन्द्रप्रमुखाः देवाः)	(ऐसे देवता जिनमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं)।
अग्निम्	अग्नि से
अब्रुवन्	कहा
(हे)	(हे)
जातवेद	जिनसे ज्ञान पैदा होता है जो ज्ञान स्वरूप है अर्थात् अग्नि।
इदम्	यह
यक्षम्	यक्ष जो पूज्य है
किम्	क्या
(अस्ति)	(है)
इति	यह
एतत्	यह
विजानीहि	जानो, पता लगाओ, विशेष रूप से जान लो।
(तदा)	(तब)
(अग्नि)	(अग्नि ने)
(तान्)	(उन)
(देवान्)	(देवताओं से)
तथा	ऐसा ही (बहुत अच्छा)
(अस्तु)	(होवे)
इति	यह
(अब्रवीत्)	(कहा)।

भावार्थ—उस अत्यन्त अद्भुत प्रकाशमान, पूज्य यक्ष को देखकर देवताओं ने अग्निदेव से, जो कि देवताओं के मुखस्वरूप हैं और जो देवताओं के आगे-आगे चलते हैं, कहा, "हे जातवेद ! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप जाइए और पता लगाइए, कि यह जो अद्भुत वस्तु देख पड़ती है, यह क्या है ?" यह सुनकर अग्निदेव ने अहंकारपूर्वक कहा कि बहुत अच्छा अभी जाता हूँ और पता लगाकर आता हूँ।

व्याख्या—देवताओं का मुख अग्नि कहा जाता है। देवताओं का होता अर्थात् बुलाने वाला अग्नि कहा जाता है। देवताओं के लिए जो हवन किया

जाता है, वह अग्नि में ही किया जाता है और समझा जाता है कि सब देवता अपना-अपना भाग अग्नि के द्वारा प्राप्त कर लेते है। जितना कुछ प्रकाश संसार में है उसका मूल कारण अग्नि ही है। सूर्य भगवान् अग्नि के ईंधन कहे जाते है—जैसा कि "तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः"। (मुण्डकोपनिषद् २-१-५) में कहा गया है, अर्थात् उसी परब्रह्म परमात्मा से इस अग्नि की उत्पत्ति हुई और जो यह सूर्य है वह उस अग्नि का ईंधन है। प्रकाश ज्ञान से प्राप्त होता है। अग्नि भी ज्ञानस्वरूप समझा जाता है। इसका नाम जातवेदा है अर्थात् सर्वज्ञ के समान।

देवताओं ने ऐसे अग्निदेव से प्रार्थना की कि हे अग्नि ! हे जातवेद ! आप इसका पता लगाइए कि यह जो यक्ष सामने है, यह कौन है। अग्नि ने कहा कि बहुत अच्छा, अभी हम जाते हैं और पता लगाकर बतावेंगे।

They. the Gods, asked the Fire God to find out as to who that Yaksha was. The Fire God said that he would do so.

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवी-ज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥

पदच्छेद—तत्, अभ्यद्रवत्, तम्, अभ्यवदत्, कः, असि, इति, अग्निः, वा, अहम्, अस्मि, इति, अब्रवीत्, जातवेदा, वा, अहम्, अस्मि, इति ॥४॥

अन्वय—(इति देवान् कथयित्वा सः अग्निः) तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत्। तम् अग्निम् (यक्षम्) अभ्यवदत्। (त्वम्) कः असि (तदा) (अग्निः) अहम् अग्निः वा अस्मि इति अब्रबीत् अहम् जातवेदाः वा अस्मि इति च अब्रवीत् ॥४॥

शब्द	अर्थ
(इति देवान्)	तब देवताओं से
(कथयित्वा)	कहकर
(सः अग्निः)	वह अग्नि
तत्	उस
(यक्षम् प्रति)	(यक्ष के पास)
अभ्यद्रवत्	तेजी से दौड़कर गय।
तम्	उन

शब्द	अर्थ
अग्निम्	अग्निदेव से
(यक्षम्)	(यक्ष ने)
अभ्यवदत्	पूछा
(त्वं)	(तुम)
कः	कौन
असि	हो।
(तदा)	(तब)
अग्निः	अग्नि ने
अहम्	मैं
अग्निः	अग्नि
वा	निश्चय करके
अस्मि	हूँ
इति	यह
अब्रवीत्	कहा
अहम्	मैं
जातवेदाः	जातवेदा नाम वाला
वा	निश्चय करके
अस्मि	हूँ
इति	यह
च	और
अब्रवीत्	कहा।

भावार्थ—ऐसा कहकर अग्निदेव बड़े वेग से दौड़कर यक्ष के पास गय। उनको देखते ही यक्ष ने पहले ही पूछा कि आप कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में अग्निदेव ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैं अग्नि हूँ—यह तो सभी लोग जानते हैं। इसके बाद फिर कहा कि मैं जातवेदा हूँ—सर्वज्ञ हूँ, यह भी सब लोग जानते है।

व्याख्या—अग्निदेव विजय और महिमा को अपनी समझते हुए उसी क्षण उस यक्ष के पास पहुँच गये। परन्तु इसके पहले कि वह कुछ पूछ सकें, कह सकें या बोल सकें, यक्ष ने पूछा कि आप कौन हैं ? अग्निदेव ने सोचा कि हमको तो सभी लोग जानते हैं। इसलिए कुछ अभिमान के साथ

कहा कि मैं अग्नि हूँ, यह बात सब लोग जानते हैं। मेरा दूसरा नाम जातवेदा भी है।

The Fire God moved to the Yaksha who asked the Fire God as to who he was. There-upon the Fire God said that he was the Fire God, the well-known "JATA-VEDA" i.e. the source of all knowledge.

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥५॥

पदच्छेद—तस्मिन्, त्वयि, किम्, वीर्यम्, इति, अपि, इदम्, सर्वम्, दहेयम्, यत्, इदम्, पृथिव्याम्, इति ॥५॥

अन्वय—(तत्) (अहंकारयुक्तं) (अग्नेः) (वचनम्) (श्रुत्वा) (ब्रह्म) (पुनः) (पृच्छति) तस्मिन् त्वयि (अग्नौ) किम् वीर्यम् (अस्ति) इति (ब्रह्मणः) (वचनम्) (श्रुत्वा) (अग्निः) (पुनः) (सगर्वम्) (आह) पृथिव्याम् यत् इदम् (किञ्चित्) सर्वम् (तत्) (सर्वम्) अपि दहेयम्।

शब्द	अर्थ
(तत्)	(उस)
(अहंकारयुक्तं)	(अहंकारयुक्त)
(अग्नेः)	(अग्नि के)
(वचनम्)	(वचन को)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
(पुनः)	(फिर)
(पृच्छति)	(पूछते हैं)
तस्मिन्	ऐसे
त्वयि	तुम में
(अग्नौ)	(अग्नि में)
किम्	क्या
वीर्यम्	सामर्थ्य
(अस्ति)	(है)
इति	यह
(ब्रह्मणः)	(परब्रह्म परमात्मा के)

शब्द	अर्थ
(वचनम्)	(वचन को)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)
(अग्निः)	(अग्नि)
(पुनः)	(फिर)
(सगर्वम्)	(गर्व के साथ)
(आह)	(कहा)
पृथिव्याम्	पृथिवी में
यत्	जो
इदम्	यह
(किंचित्)	(कुछ भी)
अस्ति	है
तत्	उस
सर्वम्	सबको
अपि	भी
दहेयम्	जला सकता हूँ।

भावार्थ—जब अग्नि ने बड़े गर्व के साथ यह कहा कि मैं अग्नि हूँ तथा सर्वज्ञ जातवेदा हूँ, इस बात को सब लोग जानते हैं। अग्नि के ऐसे वचन सुनकर परब्रह्म परमात्मा ने पूछा कि इस प्रकार प्रसिद्ध जो आप हैं, आपका सामर्थ्य क्या है ? अर्थात् आप में क्या शक्ति है ? इस प्रश्न को सुन कर अग्निदेव ने उसी प्रकार गर्व से कहा कि पृथ्वी में तथा और भी सभी जगह जो कुछ है, उस सबको मैं जलाकर राख कर सकता हूँ।

व्याख्या—यक्ष के रूप में परब्रह्म परमात्मा अग्निदेव के अभिमान भरे शब्दों में किसी प्रकार की बाधा न देते हुए मानो आदर से पूछ रहे हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा, हमने जान लिया। ठीक है, अब आप यह बतलाइए कि आपकी शक्ति क्या है ? आप क्या कर सकते हैं ? अग्निदेव ने उत्तर दिया कि इस संसार में पृथिवी पर जो कुछ है, यदि मैं चाहूँ तो उन सबको मैं जला सकता हूँ।

Yaksha asked the Fire God as to what was the most that he could do. The Fire God asserted that he could burn to ashes all that existed on the earth.

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्ष-मिति ॥६॥

पदच्छेद—तस्मै, तृणम्, निदधौ, एतत्, दह, इति, तत्, उप-प्रेयाय, सर्वजवेन, तत्, न, शशाक, दग्धुम्, सः, ततः, एव, निववृते, न, एतत्, अशकम्, विज्ञातुम्, यत्, एतत्, यक्षम्, इति ॥६॥

अन्वय—(अग्नेः) (तत्) (उत्तरम्) (श्रुत्वा) (ब्रह्म) तस्मै (अग्नये) तृणम् निदधौ (आह) (च) (एतत्) दह इति । (सः) (अग्निः) सर्वजवेन तत् (तृणम्) दग्धुम् (तत्) उपप्रेयाय (परन्तु) तत् (तृणम्) दग्धुम् न शशाक, (तदा) सः अग्निः ततः (यक्षात्) एव निववृते, (तान्) (देवान्) (आह) (च) यत् एतत् यक्षम् अस्ति (तत्) एतत् (अहम्) विज्ञातुम् न अशकम् ॥

शब्द	अर्थ
(अग्नेः)	(अग्नि के)
(तत्)	(उस)
(उत्तरम्)	(उत्तर को)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा ने)
तस्मै	उस
(अग्नये)	(अग्नि के लिए अर्थात् अग्निके सामने)
तृणम्	तिनके को
निदधौ	रख दिया
(आह)	(कहा)
(च)	(और)
(एतत्)	(इसको)
दह	जलाओ
इति	यह
(सः)	(वह)
(अग्निः)	(अग्नि ने)
सर्वजवेन	पूरे वेग से
तत्	उस

शब्द	अर्थ
(तृणम्)	(तृण को)
दग्धुम्	जलाने के लिए
(तत्)	(उसके)
उपप्रेयाय	पास पहुँच गए
(परन्तु)	(लेकिन)
तत्	उस
(तृणम्)	(तिनके को)
दग्धुम्	जलाने को
न	नहीं
शशाक	सका।
(तदा)	(तब)
सः	वह
अग्निः	अग्नि
ततः	वहाँ से
(यक्षात्)	(यक्ष के पास से)
एव	ही
निववृते	लौट आये।
(तान्)	(उन)
(देवान्)	(देवताओं से)
(आह)	(कहा)
(च)	(और)
यत्	जो
एतत्	यह
यक्षम्	यक्ष
अस्ति	है
(तत्)	(उस)
एतत्	इसको
(अहम्)	(मैं)
विज्ञातुम्	जानने को
न	नहीं
अशकम्	सका

शब्द	अर्थ
वायुम्	वायु को
अब्रुवन्	कहा
हे	(हे)
वायो	वायु देवता
त्वम्	(तुम)
एतत्	यह
यक्षम्	यक्ष
किम्	कौन है ।
एतत्	यह
इति	यह
विजानीहि	विशेष रूप से पता लगाओ ।
(तदा)	(तब)
(वायुः)	(वायु ने)
तथा	वैसा ही
(करिष्यामि)	(करूँगा)
इति	यह
(अब्रवीत्)	(कहा) ।

भावार्थ—**तब सब देवताओं ने वायु से कहा, "हे वायु देवता ! तुम इस बात का विशेष रूप से पता लगाकर आओ कि यह यक्ष कौन है" । वायु देवता ने कहा, "बहुत अच्छा, जैसा आप लोग कहते हैं, वैसा ही करूँगा" ।**

व्याख्या—मंत्र ७-८-९-१० में यह कहा गया है कि जब अग्निदेव यक्ष का कुछ पता न लगा सके और लौट आए, तो सब देवताओं ने वायुदेव से कहा कि अब आप जाइए, पता लगाइए । वायुदेव गए । यक्ष ने उनका नाम और सामर्थ्य पूछा और वायुदेव के सामने एक छोटा सा तिनका रक्खा तथा उड़ाने के लिए कहा । पर वे न उड़ा सके और लौट आए और देवताओं से कह दिया कि हम भी पता न लगा सके ।

अग्निदेव के बाद वायुदेव के भेजने से ऐसा जान पड़ता है कि देवताओं ने यह समझ रखा था कि अग्नि से वायु का सामर्थ्य अधिक है । इसमें प्रमाण भी है "वायोरग्निः" अर्थात् वायु से अग्नि का जन्म हुआ । वायु कारण है अग्नि कार्य । पृथिवी, जल और अग्नि एक दूसरे से अधिक सूक्ष्म होते

जाते हैं, परन्तु प्रकाश में विशेषता होती जाती है। अग्नि के दो गुण कहे गये है—प्रकाश और ताप। ताप थोड़ी देर तक कार्य करता है। परन्तु प्रकाश उससे कई गुना अधिक दूर से अपना कार्य करता है। अग्नि में प्रकाश अपना गुण है और ताप वायु के संयोग से होता है। वायु का गुण स्पर्श है। वह अग्नि से अधिक सूक्ष्म है। उसमें अधिक सामर्थ्य होना उचित ही है। अस्तु अग्निदेव से वायुदेव का सामर्थ्य अधिक है। प्रत्यक्ष रूप से यह देखा जाता है कि अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए वायु से काम लिया जाता है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्र में अग्नि और वायु का साहचर्य अर्थात् साथ-साथ चलना या मित्रता मानी जाती है।

The Gods then asked the Air God to find out as to who that Yaksha was and the Air God replied that he would do so.

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवी-न्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

पदच्छेद—तत्, अभ्यद्रवत्, तम्, अभ्यवदत्, कः, असि, इति, वायुः, वा, अहम्, अस्मि, इति, अब्रवीत्, मातरिश्वा, वा, अहम्, अस्मि, इति ॥८॥

अन्वय—(एतत्) (उक्त्वा) (वायुः) तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत्, तम् (तथागतम्) (वायुं यक्षम्) अभ्यवदत् (त्वम्) कः असि इति (तच्छ्रुत्वा वायुः) अब्रवीत् अहं वायुः वा अस्मि इति, अहम् वा मातरिश्वा अस्मि इति ॥८॥

शब्द	अर्थ
(एतत्)	(यह)
(उक्त्वा)	(कहकर)
(वायुः)	(वायु देवता)
तत्	उस
(यक्षम्)	(यक्ष के)
(प्रति)	(और पास)
अभ्यद्रवत्	दौड़कर गए
तम्	उन
(तथागतम्)	(उस प्रकार आए हुए)
(वायुम्)	वायु से
(यक्षम्)	(यक्ष ने)

शब्द	अर्थ
अभ्यवदत्	कहा
(त्वं)	(तुम)
कः	कौन
असि	हो
इति	यह
(तच्छ्रुत्वा)	(यह सुनकर)
(वायुः)	(वायु ने)
अब्रवीत्	कहा
अहम्	मैं
वायुः	वायु
वा	निश्चय करके
अस्मि	हूँ
इति	यह
अहम्	मैं
वा	निश्चय करके
मातरिश्वा	अन्तरिक्ष में चलने वाला वायु
अस्मि	हूँ
इति	यह ।

भावार्थ—देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके वायुदेव उस यक्ष के पास तेजी से दौड़कर गए। यक्षने उन वायुदेव को इस प्रकार आया हुआ देखकर पूछा, "आप कौन हैं ?" वायुदेव ने उत्तर दिया कि मैं वायु हूँ। इस बात को सभी जानते हैं और मैं मातरिश्वा भी हूँ, इस बात को भी सब लोग जानते हैं। मैं अन्तरिक्ष लोक में भी चलता रहता हूँ।

Saying this, the Air God ran to the Yaksha who asked the Air God as to who he was. There-upon, the Air God said that he was Air God, the well-known MATARISHWA i. e. one who is always moving in space.

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदँ सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ।।९।।

पदच्छेद—तस्मिन्, त्वयि, किं, वीर्यम्, इति, अपि, इदम्, सर्वम्, आददीयम्, यत्, इदम्, पृथिव्याम्, इति ।।९।।

अन्वय—(तत् सगर्वम् वायोः वचनम् श्रुत्वा यक्षम् पुनः अपृच्छत्) तस्मिन् त्वयि (वायौ) किं वीर्यम् (अस्ति) इति। (तदा वायुः अवदत्) यत् इदम् सर्वम् पृथिव्याम् (अस्ति) इदम् (सर्वम्) अपि आददीय इति ॥९॥

शब्द	अर्थ
(तत्)	(उस)
(सगर्वम्)	(गर्व के साथ)
(वायोः)	(वायु देवता के)
(वचनम्)	(वचन को)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)
(यक्षम्)	(यक्ष ने)
(पुनः)	(फिर)
(अपृच्छत्)	(पूछा)
तस्मिन्	उस
त्वयि	तुममें
(वायौ)	(वायु में)
किम्	क्या
वीर्यम्	सामर्थ्य
(अस्ति)	(है)
इति	यह
(तदा)	(तब)
(वायुः)	(वायु ने)
(अवदत्)	(कहा)
यत्	वह
इदम्	यह
सर्वम्	सब कुछ
पृथिव्याम्	पृथिवी में
(अस्ति)	(है)
इदम्	इस
(सर्वम्)	(सबको)
अपि	भी
आददीय	ले सकता हूँ उठा सकता हूँ उड़ा सकता हूँ।
इति	यह।

भावार्थ—वायु देव के इस प्रकार उत्तर देने पर यक्ष ने उन वायुदेव से फिर पूछा, आप जो इस प्रकार वायु और मातरिश्वा हैं, आप में क्या सामर्थ्य है ? वायु देव ने कहा कि इस पृथिवी में जो कुछ भी है, मैं सबको ग्रहण कर सकता हूँ, यानी उड़ा ले जा सकता हूँ ।

The Yaksha asked the Air God as to what was the most that he could do. The Air God asserted that he could lift and sweep away all that existed on earth.

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृत्ते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥

पदच्छेद—तस्मै, तृणं, निदधौ, एतत्, आदत्स्व, इति, तत्, उपप्रेयाय, सर्वजवेन, तत्, न, शशाक, आदातुं। सः, ततः, एव, निववृत्ते, न, एतत्, अशकम्, विज्ञातुं, यत्, एतत्, यक्षम्, इति ॥१०॥

अन्वय—(तदा, यक्षम्) तस्मै, (वायवे) तृणं, निदधौ, (आह, च तं, वायुम्) एतत् (तृणं) (त्वम्) आदत्स्व, इति, (तदा वायुः) तत् (तृणं) सर्वजवेन, उपप्रेयाय, (परन्तु सः वायुः) तत् (तृणम्) आदातुं न शशाक। (तदनन्तरम्) सः (वायुः) ततः, (यक्षसकाशात्) एव, निववृत्ते (आह च तान् देवान्) यत्, एतत् यक्षम् (अस्ति) (तत्) एतत्, विज्ञातुम्, न, अशकम् इति ॥१०॥

शब्द	अर्थ
(तदा)	(तब)
(यक्षम्)	(यक्ष ने)
तस्मै	उन
(वायवे)	(वायु के लिए अर्थात् उनके सामने)
तृणम्	एक तिनके को
निदधौ	रख दिया
(आह)	(कहा)
(च)	(और)
(तम्)	(उन)
(वायुम्)	(वायु से)
एतत्	इस

शब्द	अर्थ
(तृणम्)	(तिनके को)
(त्वम्)	(तुम)
आदत्स्व	ग्रहण करो
इति	यह
(तदा)	(तब)
(वायुः)	(वायु देवता)
तत्	उस
(तृणम्)	(तिनके को)
सर्वजवेन	पूरी शक्ति लगाकर
उपप्रेयाय	पास गए
(परन्तु)	(परन्तु)
(सः)	(वे)
(वायुः)	(वायुदेवता)
तत्	उस
(तृणम्)	(तिनके को)
आदातुम्	उठाने को या उड़ाने को
न	नहीं
शशाक	सके ।
(तदनन्तरम्)	(उसके बाद)
सः	वह
(वायुः)	(वायु)
तत्	उस
(यक्षसकाशात्)	(यक्ष के पास से)
एव	ही
निववृत्ते	लौट आये
(आह)	(कहा)
(च)	(और)
(तान्)	(उन)
(देवान्)	(देवताओं से)
यत्	कि
एतत्	यह

शब्द	अर्थ
यक्षम्	यक्ष
(अस्ति)	(है)
(तत्)	(उस)
एतत्	इस
(अहम्)	(मैं)
विज्ञातुम्	जानने को
न	नहीं
अशकम्	सका
इति	यह ।

भावार्थ—**जब वायुदेव ने अपने सामर्थ्य का इस प्रकार वर्णन किया, तब यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि भला आप इस तिनके को ही ले लीजिए और उड़ा दीजिए। इस पर वायुदेव ने अपनी सारी शक्ति लगाकर उस तिनके को उड़ाना चाहा, परन्तु उड़ा न सके। इसके बाद वायुदेवता ने भी अग्नि की भाँति अधिक जानने का प्रयत्न नहीं किया। वहीं से लौट आए और देवताओं के पास आकर कहा, "वह यक्ष क्या है?" यह हम नहीं जान सके॥१०॥**

व्याख्या—मंत्र ७-८-९-१० में यह कहा गया है कि जब अग्नि देव यक्ष का कुछ पता न लगा सके और लौट आए, तो सब देवताओं ने वायुदेव से कहा कि अब आप जाइए और पता लगाइए। तब वायुदेव गए। यक्ष ने उनका नाम और सामर्थ्य पूछा। वायुदेव के सामने एक छोटा सा तिनका रक्खा और उड़ाने के लिए कहा। वे उड़ा न सके और लौट आए और देवताओं से कह दिया कि हम भी पता नही लगा सके।

अग्निदेव के बाद वायुदेव को भेजने से ऐसा जान पड़ता है कि देवताओं ने यह समझा कि अग्निदेव से वायुदेव का सामर्थ्य अधिक है। इसमें प्रमाण भी है "वायोरग्निः" अर्थात् वायु से अग्नि का जन्म हुआ। वायु कारण है, अग्नि कार्य। पृथिवी, जल और अग्नि, ये एक दूसरे से अधिक सूक्ष्म होते जाते हैं। परन्तु प्रकाश में विशेषता होती जाती है। अग्नि के दो गुण कहे गए हैं—प्रकाश और ताप। ताप थोड़ी देर तक काम करता है। परन्तु प्रकाश उससे कई गुना अधिक देर तक अपना कार्य करता है। अग्नि में प्रकाश अपना गुण है और वायु के संयोग से होता है। वायु का गुण स्पर्श

है। वह अग्नि से अधिक सूक्ष्म है। उसमें सामर्थ्य अधिक होना उचित ही है। अस्तु अग्निदेव से वायुदेव का सामर्थ्य अधिक है। प्रत्यक्ष रूप से देखा भी जाता है कि अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए वायु से काम लिया जाता है। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्र में अग्नि और वायु का साहचर्य अर्थात् साथ-साथ चलना यानी मित्रता मानी जाती है।

The Yaksha on hearing the reply of the Air God, put a piece of straw before the Air God and asked him to take it up. The Air God approached the straw with all swiftness and force at his command, but he could not lift that piece of straw. There-upon, the Air God returened and told the Gods that he could not find out as to who that Yaksha was.

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥११॥

पदच्छेद—अथ, इन्द्रम्, अब्रुवन्, मघवन्, एतत्, विजानीहि, किम्, एतद्, यक्षम्, इति, तथा, इति, तत्, अभ्यद्रवत्, तस्मात्, तिरोदधे ॥११॥

अन्वय—अथ (ते देवाः) इन्द्रम् अब्रुवन् (हे) मघवन् (त्वम्) एतत् यक्षम् किम् इति एतत् विजानीहि (तदा) इन्द्रः तथा (अस्तु) इति उक्त्वा तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत् (परन्तु यक्षम्) तस्मात् (इन्द्रात्) तिरोदधे ॥११॥

शब्द	अर्थ
अथ	इसके बाद
(ते देवाः)	(उन देवताओं ने)
इन्द्रम्	इन्द्र से
अब्रुवन्	कहा
(हे)	(हे)
मघवन्	इन्द्र, बलवान्, धनवान्
(त्वं)	(तुम)
एतत्	यह
यक्षम्	यक्ष
किम्	कौन है
इति	यह
एतत्	यह

शब्द	अर्थ
विजानीहि	विशेष रूप से जानो।
(तदा)	(तब)
इन्द्रः	इन्द्र
तथा	वैसा
(अस्तु)	(होवे)
इति	यह
उक्त्वा	कहकर
तत्	उस
(यक्षम् प्रति)	(यक्ष के पास)
अभ्यद्रवत्	दौड़कर गए
(परन्तु)	(परन्तु)
(यक्षम्)	(यक्ष)
तस्मात्	उस
(इन्द्रात्)	(इन्द्र से)
तिरोदधे	अन्तर्ध्यान हो गया।

भावार्थ—जब अग्निदेव और वायुदेव यक्ष का बिना पता लगाए लौट आए, तब सब देवताओं ने मिलकर इन्द्र से कहा कि आप हम सब में श्रेष्ठ और बलवान् हैं। आप ही जाकर यह पता लगाइए कि यह यक्ष कौन हैं। देवताओं की इस बात को सुनकर इन्द्र महाराज ने कहा, "बहुत अच्छा, हम जाते हैं।" यह कह कर इन्द्र उस यक्ष के पास गए, परन्तु यक्ष उनके सामने से अन्तर्धान हो गया ॥११॥

व्याख्या—अग्निदेव और वायुदेव के यक्ष का बिना कुछ पता लगाए ही लौट आने पर सब देवताओं ने अपने राजा इन्द्र से कहा कि आप हम लोगों में श्रेष्ठ हैं। अब आप ही जाकर पता लगाइए कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र महाराज गए तो, परन्तु उनके पहुँचते ही यक्ष अदृश्य हो गया।

इस आख्यायिका में यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई गयी है कि और सब देवताओं से अग्नि देव बड़े हैं। वायु उनसे भी बड़े हैं और इन्द्र सबसे बड़े हैं। परन्तु यक्ष का पता इन्द्र भी न लगा सकें। अब यह इन्द्र कौन है ? इस पर विचार किया जाता है। 'प्रश्नोपनिषद्' में ऐसा कहा गया है कि भार्गव वैदर्भि ऋषि ने पिप्लादि मुनि के पास जाकर शिष्य रूप से यह प्रश्न किया कि इस मनुष्य शरीर को धारण करनेवाले कौन-कौन से देवता हैं और उनमें

सबसे श्रेष्ठ कौन हैं ? उत्तर में पिप्लादि मुनि ने कहा कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्र इन नौ देवताओं ने स्पष्ट रूप से कहा कि हम लोग इस शरीर को धारण करते है। इस पर प्राण देवता ने जो सबसे श्रेष्ठ है, कहा कि तुम मोह में क्यों फंसते हो। मै ही अपने को पाँच भागों में विभक्त करके इन शरीर को धारण करता हूँ या इन शरीरों की रक्षा करता हूँ। उन नवों देवताओं ने जब विश्वास नहीं किया, तब प्राण ने अभिमान के वशीभूत होकर उत्क्रमण करने अर्थात् निकलने का सा नाटक किया। तब वे सभी नवों देवता निकलने के लिए विवश हुए और प्राण से प्रार्थना करने लगे कि आप निकलिए नहीं और स्तुति करते हुए कहा कि यह जो सूर्य है, जो पर्जन्य है, मेघ है, जो मघवा है, इन्द्र है, वायु, पृथिवी, सत् असत्, अमृत ये सब आप ही है। (प्रश्नोपनिषद् द्वितीय प्रश्न म० १ से ५ तक)

इसी प्रकार प्राणों की श्रेष्ठता छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में प्रकारान्तर से दिखलाई गई है। अस्तु यह प्राण जो है, वही इन्द्र रूप से यहाँ दिखलाया गया है। ऐसा समझ पड़ता है तथा प्राण की और भी कई स्थानों पर इन्द्र से तुलना की गयी है।

प्राण एक तो पंच प्राण रूप से माने गए है। १—प्राण, २—अपान, ३—व्यान, ४—समान, ५—उदान; परन्तु इन सब प्राणों के अतिरिक्त एक मुख्य प्राण भी माना जाता है। श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने वेदान्तदर्शन की टीका करते हुए दिखलाया है कि प्राण शब्द मुख्य प्राण के अर्थ में आता है, साधारण प्राण के अर्थ में नहीं आता। यह प्राण आत्मा से पैदा होता है जैसा कि प्रश्नोपनिषद् (तृतीय प्रश्न म० १) में कौशय आश्वलायन ऋषि ने पिप्लादि मुनि से शिष्य भाव से यह पूछा कि यह प्राण जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है वह कहाँ से पैदा होता है और इस शरीर में कैसे आता है ? इस प्रश्न के उत्तर में पिप्लादि ऋषि यह कहते हैं कि यह प्राण आत्मा से पैदा होता है और मन के कारण इस शरीर में आता है।

पुराणों में इन्द्र देवताओं के राजा माने गए हैं और संस्कृत कोश के हिसाब से ऐश्वर्यवाला इन्द्र है, ऐसा कहा गया है। परन्तु असुरों से पराभूत होकर उन्होंने विष्णु भगवान् से सहायता मांगी है और सहायता प्राप्त की है। अस्तु ऐसा समझ पड़ता है कि जितनी भी शक्ति है, जिसका कि कुछ अनुमान किया जा सकता है, जहाँ तक मन की गति है, वहीं तक इन्द्र की यानी प्राण की शक्ति है।

The Gods then asked the powerful Indra to find out difinitely as to who that Yaksha was and the Indra said that he would do so. Thereupon Indra ran to the Yaksha but the Yaksha disappeared from his sight.

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाँ हैमवतीं ताँ होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥१२॥

पदच्छेद—सः, तस्मिन्, एव, आकाशे, स्त्रियम्, आजगाम, बहु, शोभमानाम्, उमाम्, हैमवतीम्, ताम्, ह, उवाच, किम्, एतत्, यक्षम्, इति ॥१२॥

अन्वय—सः (इन्द्रः तस्मिन् यक्षे तिरोभूते सति इतस्ततः पश्यन्) तस्मिन् एव आकाशे (एकाम्) बहु शोभमानाम् स्त्रियम् आजगाम, ताम् (उमाम्) हैमवतीम् ह (इन्द्रः) उवाच एतत् यक्षम् किम् (आसीत्) इति ॥१२॥

शब्द	अर्थ
सः	उन
(इन्द्रः)	(इन्द्रदेव ने)
(तस्मिन्)	(उन)
(यक्षे)	(यक्ष के)
(तिरोभूते सति)	(अन्तर्धान हो जाने पर)
(इतस्ततः)	(इधर-उधर)
(पश्यन्)	(देखता हुआ)
तस्मिन्	उस
एव	ही
आकाशे	आकाश में
(एकाम्)	(एक श्रेष्ठ)
बहुशोभमानाम्	अत्यन्त शोभायमान
स्त्रियम्	स्त्री के पास
आजगाम	पहुँच गए।
ताम्	उन
उमाम्	उमा से
हैमवतीम्	हिमवान् की लड़की अथवा सुवर्णमयी
ह	निश्चय करके, ऐसा कहा जाता है।

शब्द	अर्थ
(इन्द्रः)	(इन्द्र ने)
उवाच	कहा
एतत्	यह
यक्षम्	यक्ष
किम्	क्या
(आसीत्)	(था)
इति	यह ।

भावार्थ—जब इन्द्र के पहुँचने पर यक्ष अन्तर्ध्यान हो गये, तब इन्द्र देव बड़ आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगे तो देखा कि वहाँ आकाश में एक स्त्री है जो बड़ी शोभावाली है तथा विनय के साथ वे उनके पास गए तो देखा कि यह तो उमा है जो हिमवान् की पुत्री है, अथवा जिसका शरीर सुवर्ण आभूषण से सुवर्णमय हो रहा है, वही है। इन्द्र देव ने उनसे पूछा कि हे माता ! अभी-अभी यहाँ पर जो यक्ष था और जो हमारे आने के बाद ही अन्तर्धान हो गया, आप हमको कृपा करके बता दीजिए कि वह कौन था, हम बड़ी श्रद्धा से आप से यह पूछना चाहते हैं।

व्याख्या—इस मंत्र में उमा देवी का नाम प्रत्यक्ष रूप से आया है। इनका और महादेव जी का एकत्व भाव माना गया है। महादेव जी को अर्धनारीश्वर कहा गया है अर्थात् ऐसा माना गया है कि उनका शरीर आधा पुरुष का है और आधा स्त्री का। महादेव जी सभी विद्याओं के मूल माने गए हैं और उमा उनकी अनन्य सहचरी अर्थात् सदा साथ रहनेवाली मानी गयी हैं। यदि महादेव जी ब्रह्म है, तो उमा ब्रह्मविद्या है। जीव का धर्म अभिमान है। जब तक जीवत्व है, तब तक अभिमान है। ब्रह्मविद्या के द्वारा जीव का जीवत्व दूर हो जाता है और ब्रह्मत्वैकभाव प्राप्त हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन्द्र ने इसी ब्रह्मविद्या के द्वारा परब्रह्म परमात्मा को पहिचाना और उन्होंने ही अपने सब देवताओं को ब्रह्म का ज्ञान कराया। यह बात और उपनिषदों में पाई जाती है। अतः यह समझ पड़ता है कि यह उमा ब्रह्मविद्या ही है। इन्द्र को अपरा विद्या का ज्ञान था। परन्तु इस परा विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या का ज्ञान इन्द्र को उमा के द्वारा ही प्राप्त हुआ।

In that very space Indra came across a woman, the most charming, the golden Uma or the daughter of the Himwan. Indra anxiously asked her as to who that Yaksha was ?

चतुर्थ खण्ड

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

पदच्छेद—सा, ब्रह्म, इति, ह, उवाच, ब्रह्मणः, वा, एतत्, विजये, महीयध्वम्, इति, ततः, ह, एव, विदाञ्चकार, ब्रह्म, इति ॥१॥

अन्वय—सा (तथाभूता उमा तम् इन्द्रम् सविनयम् पृच्छन्तम्) ह एतत् उवाच (यक्षम्) ब्रह्म एव इति ब्रह्मणः विजये वा (यूयं सर्वे देवाः) महीयध्वम् इति ह ततः एव (इन्द्रः) तत् (यक्षम्) ब्रह्म (एव) (आसीत्) इति विदाञ्चकार ॥१॥

शब्द	अर्थ
सा	उस
(तथाभूता)	(उस प्रकार की)
(उमा)	(उमा ने)
(तम्)	(उन)
(इन्द्रम्)	(इन्द्र के)
(सविनयम्)	(विनययुक्त)
(पृच्छन्तम्)	(पूछने पर)
ह	ऐसा कहा जाता है
उवाच	कहा
एतत्	यह
(यक्षम्)	(यक्ष)
ब्रह्म	ब्रह्म
एव	ही
इति	यह
ब्रह्मणः	ब्रह्म की
विजये	विजय से
वा	निश्चय करके
(यूयम्)	(तुम लोग)

शब्द	अर्थ
(सर्वे)	(सब)
(देवाः)	(देवता)
महीयध्वम्	महिमा को प्राप्त हुए हो।
इति	यह
ह	ऐसा कहा जाता है
ततः	तब
एव	ही
(इन्द्र)	(इन्द्र ने)
(तत्)	(वह)
(यक्षम्)	(यक्ष)
ब्रह्म	ब्रह्म
(एव)	(ही)
(आसीत्)	(था)
इति	यह
विदाञ्चकार	जाना।

भावार्थ—इन्द्र के इस प्रकार विनय के साथ पूछने पर उमा देवी ने कहा कि यह देवासुर-संग्राम में जो विजय हुई है वह निश्चय करके ब्रह्म की ही हुई है यानी इस विजय के कारण ब्रह्म ही हैं और आप देवताओं को जो यह गौरव प्राप्त हुआ है, यह भी उन्हीं के कारण है। ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र देवता ने इस बात को तभी जाना कि ब्रह्म ही यह यक्ष थे।

व्याख्या—अब यह चतुर्थ खण्ड प्रारम्भ होता है। यह इस उपनिषद् का अन्तिम खण्ड है। इसमें उपनिषद् का रहस्य एवं सिद्धान्त आख्यायिका यानी कथा के रूप में लिखा गया है। उमा देवी ने इन्द्र से कहा कि यह यक्ष, जिसको तुमने देखा तो अवश्य, परन्तु उसके पास जाते ही वह अदृश्य हो गया, वह परब्रह्म परमात्मा हैं। तुम्हारी जो कुछ विजय हुई तथा जो तुम्हारी महिमा हुई है, उसके कारण यही परब्रह्म परमात्मा हैं। इस प्रकार इन्द्र ने उमा देवी के कहने से ही यह जाना कि वह यक्ष जो प्रगट हुआ था और जो अदृश्य हो गया, वह परब्रह्म परमात्मा ही था। इन्द्रियाँ एक मत से ७ मानी गयी हैं। दो आँख, दो कान, दो नाक के छिद्र और एक मुख—इन सातों इन्द्रियों को प्राण भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त दो और इन्द्रियाँ

हैं लिंग और गुदा। ये सब मिलकर के ९ होते हैं। जैसा कि गीता में कहा गया है 'नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन्' (अ० ५ श्लोक १३) अर्थात् यह देही, जीव, आत्मा, विज्ञान, आत्मा इत्यादि इस नौ द्वार वाले शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता है और न कुछ करवाता ही है। कठोपनिषद् (के द्वितीय अध्याय द्वितीय वल्ली मंत्र १) में कहा गया है, 'पुरमेकादशद्वार-मजस्यावक्रचेतस:'। अर्थात् यह शरीर एकादश यानी ११ द्वार वाला है, जिसका स्वामी अज है और जो पूर्ण रूप से शुद्ध है। इस प्रकार शरीर में ११ इन्द्रियाँ हैं। कुछ लोगों का मत है कि ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ मन, चित्त और बुद्धि–ये १३ इन्द्रियाँ हैं। इन सभी इन्द्रियों के देवता हैं। इन देवताओं की संख्या ३३ मानी गयी है। ८ वस्तु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति, और विश्वदेव। गीता में कहा गया है—'वसूनां पावकश्चास्मि' (अ० १० श्लोक २३) अर्थात् वसुओं में मैं पवित्र करने वाला अग्नि हूँ। अग्नि पृथिवी का देवता है। इन सभी देवताओं में अग्नि श्रेष्ठ है, सर्वव्यापक है। रुद्र अन्तरिक्ष के देवता है और वायु भी अन्तरिक्ष के देवता है। यह वायु, जैसे वसुओं में अग्नि है वैसे रुद्रों में वायु है। आदित्य, यह स्वर्ग के देवता है। सूर्य के १२ महीनें ही १२ आदित्य हैं। इनमें इन्द्र भी है, और इन्द्र आदित्यस्वरूप ही हैं। ये ३१ देवता इस उपनिषद् मे वे माने गए हैं, जिनको कि इस बात का अभिमान हुआ कि हमारी विजय हुई, हमारी महिमा है। इन्द्र प्राणरूप माने गए हैं। मन-बुद्धिसहित सभी इन्द्रियाँ सो जाती हैं, परन्तु प्राण जागता रहता है। यही प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को जब वे जागते रहते हैं, तब ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराता है। अस्तु इस आख्यायिका में यह दिखलाया गया है कि अग्नि और वायु में मन की प्रेरणा प्राणों के द्वारा होती है और वह प्राण मन के द्वारा इस शरीर में आता है। जैसा कि 'मनोकृतेना-यात्यस्मिन् शरीरे' (प्रश्नोपनिषद् तृतीय प्रश्न मं० ३) अर्थात् यह प्राण मन की ही प्रेरणा से इस शरीर में आता है। जब मन और बुद्धि जागती हुई अवस्था में प्राण को प्रेरित करती है, तब जीव ब्रह्मविद्या के द्वारा आत्मस्वरूप परब्रह्म परमात्मा परमपुरुष को जानता है, प्राप्त करता है और कृतार्थ हो जाता है।

The same Uma said that it was indeed Brahma. It was due to the victory of the Brahma that you Gods became so glorious. It was only then that Indra realised that it was Brahma.

The same Uma said that the Yaksha, whom you saw, but who disappeared when you approached, was Brahma himself. The

victory in 'Asura Sur Sangram' was due to Brahma and due to his victory, you Gods, became so glorious. So it was from Uma that Indra came to know that Yaksha who disappeared was Brahma himself.

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।२।

पदच्छेद—तस्मात्, वा, एते, देवाः, अतितराम्, इव, अन्यान्, देवान्, यत्, अग्निः, वायुः, इन्द्रः, ते, हि, एनत्, नेदिष्ठम्, पस्पृशुः, ते, हि, एनत्, प्रथमः, विदाञ्चकार, ब्रह्म, इति ।।२।।

अन्वय—तस्मात् (हि) (कारणात्) अग्निः वायुः इन्द्रः ते एते देवाः अन्यान् देवान् अतितराम् यत् (ते) (अग्निः) (वायुः) (इन्द्रः) (ते) (देवाः) हि एनत् (यक्षम्) नेदिष्ठम् पस्पृशुः (अपि च) ते हि एनत् (यक्षम्) ब्रह्म इति प्रथमः विदाञ्चकार ।।२।।

शब्द	अर्थ
तस्मात्	उस
(हि)	(निश्चय करके)
(कारणात्)	(कारण से)
अग्निः	अग्नि
वायुः	वायु
इन्द्रः	इन्द्र
ते	वे
एते	ये
देवाः	देवता
अन्यान्	और
देवान्	देवताओं से
अतितराम्	बहुत उत्कृष्ट हैं यानी बहुत बड़े हैं
यत्	इसलिए कि
(अग्निः)	(अग्नि)
(वायुः)	(वायु)
(इन्द्रः)	(इन्द्र)
(ते)	(उन)

शब्द	अर्थ
(देवाः)	(देवताओं ने)
हि	निश्चय करके
एनत्	इस
(यक्षम्)	(यक्ष को)
नेदिष्ठम्	समीप से ही यानी बहुत पास से
पस्पृशुः	छू लिया, स्पर्श किया
(अपि च)	(और यह भी कि)
ते	उन्होंने
हि	निश्चय करके
एनत्	इस
(यक्षम्)	(यक्ष को)
ब्रह्म	ब्रह्म ही है
इति	यह
प्रथमः	पहले पहल
विदाञ्चकार	जाना ।

भावार्थ—निश्चय करके यही कारण है कि अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता और सब देवताओं से श्रेष्ठ माने गए हैं क्योंकि उन्होंने उस यक्ष के पास जाकर के उसको पास से देखा और पहले पहल जाना कि यह यक्ष ब्रह्म है ।२।

Therefore most certainly the Fire, Air and Indra Gods as if far-excel other Gods because they contacted the Yaksha most proximately and they were first to know the Yaksha as Brahma.

Definitely, this is the reason that Fire, Air and Indra Gods are supposed to be superior to other Gods, because they went to the Yaksha and saw hin from a close distance and realised for the first time that this Yaksha was Brahma.

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठम् पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

पदच्छेद—तस्मात्, वा, इन्द्रः, अतितराम्, इव, अन्यान्, देवान् सः, हि, एनत्, नेदिष्ठम्, पस्पर्श, सः, हि, एनत्, प्रथमः, विदाञ्चकार, ब्रह्म, इति ॥३॥

अन्वय—तस्मात् (एव) (कारणात्) वा इन्द्रः अन्यान् देवान् अतितराम् इव (यतः) स (इन्द्रः) एनत् (यक्षम्) प्रथमः हि (ब्रह्म) इति विदाञ्चकार ।३।

सब्द	अर्थ
तस्मात्	उस
(एव)	(ही)
(कारणात्)	(कारण से)
वा	निश्चय करके
इन्द्रः	इन्द्र देव
अन्यान्	और दूसरे
देवान्	देवताओं से
अतितराम्	अत्यन्त बढ़ गए
इव	ऐसा माना जाता है;
(यतः)	(क्योंकि)
सः	उन
(इन्द्रः)	(इन्द्र ने)
एनत्	इस
(यक्षम्)	(यक्ष को)
हि	निश्चय करके
नेदिष्ठम्	बहुत समीप से
पस्पर्श	स्पर्श किया
(पुनः)	(फिर)
(च)	(और)
सः	उस
(इन्द्रः)	(इन्द्र ने)
एनत्	इस
(यक्षम्)	(यक्ष को)
प्रथमः	पहले पहल
हि	निश्चय करके
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
इति	इस प्रकार
विदाञ्चकार	जाना।

भावार्थ—उसी कारण से निश्चय रूप से मानो ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र और सब देवताओं से बहुत बड़े हो गए; क्योंकि उन्होंने बहुत समीप से उसका स्पर्श किया और पहले पहल यह जाना कि यह यक्ष जो थे वह परब्रह्म परमात्मा ही थे ॥३॥

व्याख्या—(मन्त्र २ व ३) इन दोनों मंत्रों में पहले तो यह बात कही गयी है कि अग्नि, वायु और इन्द्र अन्य सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इनको पहले पहल यह ज्ञात हुआ और प्रत्यक्ष दर्शन भी हुए कि यह यक्ष ही परब्रह्म परमात्मा हैं। दूसरे मंत्र में यह बात कहकर तीसरे मंत्र में भी यह बात कही गयी है कि उमा देवी के बतलाने पर सर्वप्रथम इन्द्र को ज्ञान हुआ कि जिसका साक्षात्-कार उन्होंने दूर से किया था, वह यक्ष परब्रह्म परमात्मा ही थे, उन्हीं के कारण देवताओं की विजय और उन्हीं के कारण देवताओं की महिमा हुई।

पुराणों में ऐसा कहा गया है कि दिति दैत्यों की माता को अपने पुत्रों के मारे जाने पर बड़ा दुःख हुआ। कश्यप जी ने अपनी स्त्री दिति की सेवा से प्रसन्न होकर दिति को वरदान दिया कि दिति को एक ऐसा पुत्र हो जो इन्द्र को मारने वाला हो। कश्यप जी ने दुःख के साथ वचनबद्ध हो जाने के कारण 'एवमस्तु' ऐसा ही हो, कह कर कुछ नियमपालन का विधान किया। नियमों का पालन करने के कारण प्रायः अन्तिम समय में इन्द्र ने अपनी सौतेली मां दिति के नियमपालन के समय सेवा की और नियमपालन में कुछ त्रुटि देखकर माता के गर्भ में प्रवेश कर उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिए। गर्भ के रुदन करने पर इन्द्र ने "मारुत मारुत" अर्थात् रोओ नहीं, रोओ नहीं, ऐसा कहते हुए उस गर्भ के फिर सात टुकड़े कर दिए। दिति के जाग पड़ने पर इन्द्र ने हाथ जोड़े और कहा, "माता जी! आप के नियम में त्रुटि हो गयी थी। इसलिए समय पाकर उस गर्भ के ४९ टुकड़े कर दिए, परन्तु ये अब दैत्य होते हुए भी हमारे सखा हो जायेंगे।" दिति ने प्रसन्न होकर कहा, "बहुत ठीक है।" यही ४९ देवता इन्द्र के सखा हो गए और यही मरुत अर्थात् वायु देवता कहलाते हैं इनका इन्द्र से परम सानिध्य है। अतः ये इन्द्र से छोटे और इन्द्र इनसे श्रेष्ठ हैं।

अग्नि और इन्द्र के बीच में वायु, देवता हैं। वायु, अग्नि और इन्द्र दोनों के सखा हैं। "मदन अनल सखा सही" अर्थात् वायु जो है यह कामदेव रूपी अग्नि का सच्चा सखा है। अस्तु पृथिवी के सब देवताओं में अग्नि श्रेष्ठ है और अन्तरिक्ष में रहने वाले ४९ मरुत जो वायु के नाम से प्रसिद्ध है,

वे अग्नि से श्रेष्ठ हैं और इन्द्र जो स्वर्ग में रहते हैं वे स्वर्ग के देवताओं में श्रेष्ठ है। इन्द्र १२ आदित्यों में एक हैं और ये श्रावण मास के स्वामी हैं और "आदित्यो ह वै प्राणः" (प्रश्नोपनिषद् प्रश्न १ मंत्र ५) अर्थात् आदित्य निश्चय करके प्राण हैं। इस प्रकार इन्द्र का श्रेष्ठत्व स्पष्ट है।

on account of the same reason, Indra God far-excels the other Gods as he contacted the Yaksha most proximately and he was first to know that Yaksha as Brahma.

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इतीन्न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥४॥

पदच्छेद—तस्य, एष, आदेशः, यत्, एतत्, विद्युतः, व्यद्युतत्, आ, ३, इति, इत्, न्यमीमिषत्, आ, ३, इति, अधिदैवतम् ॥४॥

अन्वय—यत् एतत् विद्युतः व्यद्युतत् आ ३ एषः तस्य (ब्रह्मणः) आदेशः इति इत् न्यमीमिषत आ ३ इति (एतत्) आधिदैवतम्।

शब्द	अर्थ
यत्	जो
एतत्	यह
विद्युतः	बिजली का
व्यद्युतत्	चमक जाना
आ ३	तरह मानो
एषः	यह
तस्य	उस
(ब्रह्मणः)	(ब्रह्म का)
आदेशः	संकेत, इशारा
इति	यह
इत्	इशारा, संकेत
न्यमीमिषत्	पलक का भाँजना
आ	मानो
इति	यह
(एतत्)	(यह)
अधिदैवतम्	देखता है, उससे सम्बद्ध है।

भावार्थ—इस मंत्र में ऋषि उस परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत पक्ष का निर्देश करते हुए कहते हैं कि यदि हम उन परब्रह्म परमात्मा को बाहरी इन्द्रियों से संकेत करना चाहें तो ऐसा समझना चाहिए कि जैसे बिजली चमकती है और तत्क्षण अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् बाहरी जगत् के अन्तरतम देश में क्षण भर के लिए जान पड़ता है और फिर बदल सा जाता है। इसी प्रकार दूसरी उपमा से भगवान् का निर्देश इस प्रकार किया जाता है कि जैसे आँखें पलक भाँजती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म का साक्षात् होता है और फिर अदृश्य हो जाता है ॥४॥

व्याख्या--मंत्र ४-५-६ की व्याख्या एक साथ की जा रही है। खण्ड १ के ४ से लेकर ८ मंत्रों तक "नेदं यदिदमुपासते" यह चौथा पाद प्रत्येक मंत्र का समान रूप से है। इस पाद का अर्थ यह है कि जिसकी साधारण लोग वाणी इत्यादि के द्वारा उपासना करते है, वह यह ब्रह्म नही है। इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाणी, मन, नेत्र, कर्ण और प्राण के द्वारा जिसकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नही है। वह तो कुछ और ही है। प्रश्न होता है कि तो क्या उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना किसी प्रकार से हो ही नहीं सकती ? ऐसा समझ पड़ता है कि इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर यह उपनिषद् या ऋषि इन तीनों मंत्रों के द्वारा देते हुए प्रतीत होते है। छठे मंत्र में "उपासितव्यम्" अर्थात् उपासना करनी चाहिए, यह शब्द स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। अतः ऐसा समझ पड़ता है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना हो सकती है और करना भी आत्म-कल्याण के लिए आवश्यक है।

उपासना सगुण और निर्गुण दो प्रकार की होती है। वैदिक धर्म में निर्गुण उपासना बड़ी कठिन मानी गयी है। श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है 'ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥' (अ० १२ श्लो ३) अर्थात् जो अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वत्रग, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल और ध्रुव की उपासना करते है इत्यादि। फिर इसी अध्याय के पाँचवें श्लोक में कहते हैं 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते' अर्थात् जिनका चित्त अव्यक्त में आसक्त है, उनको अधिक क्लेश सहना होता है; क्योंकि जिनको शरीर का अध्यास है, उनको अव्यक्त गति बड़े दुःख से प्राप्त होती है। अस्तु उपनिषदों से भी, पुराणों तथा शास्त्रों से भी और वेदों से भी सगुणोपासना आवश्यक समझी गयी है। संसार में भी देखने से प्रतीत होता है कि यदि हम किसी जीवित मनुष्य की

प्रशंसा या उपासना करना चाहते हैं तो उसके रूप, नाम, और उसके गुणों का ही वर्णन करते हैं। यद्यपि वह सब शरीर से सम्बन्ध रखते है, परन्तु चूंकि शरीर से मुख्यतया उसी जीव अर्थात् आत्मा का ग्रहण होता है। वैसे ही मूर्ति द्वारा भगवान् की उपासना परमावश्यक है।

चौथे मंत्र में रूप और नाम का ग्रहण होना यानी प्राप्त होना समझ पड़ता है। उसमें बिजली का चमकना और पलक का मारना इन दोनों बातों से आँख का गुण प्रकट होता है। आँख से रूप ही देखा जाता है। परन्तु जैसा रामायण मे कहा गया है 'रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहि पहिचाने।।' अर्थात् रूप तो प्रत्यक्ष देख पड़ता है, परन्तु नाम के बिना जाने, पहिचान नहीं हो सकती। इससे ऐसा समझ पड़ता है कि रूप और नाम का निर्देश यानी इशारा इस मंत्र के द्वारा होता है। परन्तु ध्यान करने के समय आँखें मुंद जाती हैं और जप करते-करते मन भी लीन सा हो जाता है और थोड़ी थोड़ी देर में बाहर आता हुआ सा जान पड़ता है। इसी बात को इन दोनों मंत्रों—४ और ५ में समझाया है। मंत्र ४ में अधिदैवत उपासना है और मंत्र ५ में अध्यात्म उपासना है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जिन-जिन विषयों का ज्ञान करती है वह सब बाहरी देवताओं से सम्बद्ध हैं और मन जब बाहरी इन्द्रियों को वशीभूत करके अन्तर्दृष्टि होता है और बुद्धि में प्रवेश करता है, यह अध्यात्म ज्ञान है।

चौथे मंत्र में आँख को सभी इन्द्रियों का उपलक्षण अर्थात् सबसे श्रेष्ठ माना गया है। रूप और नाम की उपासना बिना आँख के नहीं हो सकती। तब भगवान् को किस प्रकार सोचा जाय? इसी बात को इस मंत्र में दिखलाया गया है। जैसे वर्षा के दिनों में घनघोर घटा छाई हुई है, बिजली बार-बार चमकती है, तो देख पड़ता है कि बिजली एक ओर चमकी और अदृश्य हो गयी और फिर दूसरी ओर फिर तीसरी ओर। इसी प्रकार अनेकों बार चमकती है और अदृश्य होती है और जैसे आँखों के पलक भाँजने में रूप नये-नये प्रकार से बार-बार दिखाई देता है और अदृश्य हो जाता है, वैसे ही सब मूर्तियों में भगवान् के अनन्त रूप और अनन्त नाम हैं। जैसे मूर्तियों के दर्शन करने के बाद मन में अनेकों प्रकार की भावनायें पैदा होती हैं और विलीन होती जाती हैं, वैसे ही मन में जो जो भावनायें पैदा होती हैं, उन सभी में जो एकत्व की भावना है, उसके द्वारा संकल्प मन में होते है। वह परब्रह्म परमात्मा अध्यात्म दृष्टि से देखा जाता है, वही अधिदैवत और अध्यात्म उपासना है।

६ठे मंत्र में "नाम" शब्द प्रत्यक्ष रूप से आया है। यह कहा गया है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना "वन" इस नाम से करनी चाहिए और फिर कहा है कि जो कोई इस बात को इसी प्रकार ठीक-ठीक समझता है, उसकी सभी वांछा अर्थात् इच्छा करते है अर्थात् आशा करते हैं कि यह हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण करेगा।

उपासना करने के समय रूप हो और नाम हो और नाम के साथ नाम का अर्थ भी हो। उसी अर्थ का चिन्तन मन एकाग्रता से जब करता हुआ ध्यान करता है, तब भगवान् का ध्यान किस भावना से करे। इसका उत्तर यह जान पड़ता है कि मन इस प्रकार की भावना करे कि जितनी भी इच्छायें, अभिलाषायें, अपने तथा संसार के कल्याण के लिए होती हैं, उन सबका आदि उसी परब्रह्म परमात्मा से है और वही उन सबको पूरा भी करेगा। मन में यह दृढ़ श्रद्धा और विश्वास हो।

In the outside would beckoning or realisation of Brahma may be compared to the flashes of lightning and twinkling of eyes.

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णꣳ संकल्पः ॥५॥

पदच्छेद—अथ, अध्यात्मम्, यत्, एतत्, गच्छति, इव च, मनः, अनेन, च, एतत्, उपस्मरति, अभीक्ष्णम्, संकल्पः ॥५॥

अन्वय—अथ (ऋषिः) (पुनः) अध्यात्मम् (पक्षम्) (दर्शयति) इत् एतत् मनः (एतत्) (ब्रह्म) (प्रति) गच्छति इव संकल्पः अनेन (मनसा) च, एतत् (ब्रह्म) अभीक्षणम् उपस्मरति ॥

शब्द	अर्थ
अथ	उसके बाद
(ऋषि)	(ऋषि)
(पुनः)	(फिर)
अध्यात्मम्	अध्यात्मविषयक
(पक्षम्)	(पक्ष को)
(दर्शयति)	(दिखलाते हैं)
यत्	यह

शब्द	अर्थ
एतत्	यह
मनः	मन
(एतत्)	(इस)
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
(प्रति)	(और)
संकल्प	संकल्प
अनेन	इस
(मनसा)	(मन के द्वारा)
च	और
एतत्	इस
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
अभीक्ष्णम्	बार-बार
उपस्मरति	स्मरण करता है ।

भावार्थ—अधिदैवत पक्ष को दिखलाने के बाद ऋषि कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा को अध्यात्म रूप से अर्थात् बाहरी इन्द्रियों से काम न लेकर अन्त-करण से समझना चाहें तो ऐसे समझना चाहिए कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक बार-बार जाता है और फिर लौट आता है। इस प्रकार से समझें और एक दूसरे प्रकार से इसको ऐसे समझना चाहिए कि जैसे मनुष्य बार-बार मन ही के द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करता है तथा ये जो संकल्प विकल्प मन में बार-बार पैदा होते हैं, वे बार-बार मन को परब्रह्म परमात्मा के स्मरण करने को बाध्य करते हैं ॥५॥

And so far as individual self is concerned, the beckoning or realisation of Brahma may be compared to the mind trying to approach Brahma and the individual self concentrating the mind on Brahma again and again.

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हेनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥

पदच्छेद—तत्, ह, तत्, वनम्, नाम, तत्, वनम्, उपासितव्यम्, सः, यः, एतत्, एवम्, वेद, अभि, ह, एनम्, सर्वाणि, भूतानि, संवाञ्छन्ति ॥६॥

अन्वय—तत् (ब्रह्म) ह वनम नाम तत् (ब्रह्म) तत् वनम् इति उपासितव्यम् सः यः एतत् (ब्रह्म) एवम् वेद सर्वाणि भूतानि ह एनम् अभिसंवाञ्छन्ति ॥६॥

शब्द	अर्थ
तत्	वह
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
ह	निश्चय करके
वनम्	भजन करने योग्य। आनन्दस्वरूप।
नाम	यह प्रसिद्ध है
तत्	वह
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
तत् वनम्	वह भजन के योग्य, वह आनन्दस्वरूप, वह अवस्था जहाँ कि शान्ति अवश्यमेव मिल जाय।
इति	यह
उपासितव्यम्	उपासना करनी चाहिए।
सः	वह मनुष्य
यः	जो
एतत्	इस
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा को)
एवं	इस प्रकार
वेद	जान गया
सर्वाणि	सब
भूतानि	प्राणी
ह	निश्चय करके
एनम्	इसको
अभिसंवाञ्छन्ति	सब प्रकार से उससे प्रेम करते हैं या आशा करते हैं कि सब प्रकार से यह हमारी इच्छाओं को पूरा करेगा।

भावार्थ—ऋषिने खण्ड एक के ४ से ८ मन्त्रों तक यह बतलाया है कि साधारण सांसारिक लोग जिस ब्रह्म की उपासना करते हैं, वह वह ब्रह्म नहीं है जो मन का भी मन, प्राण का प्राण इत्यादि है। इससे लोग यह न समझें कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना ठीक हो नहीं सकती। अतः ऋषि

इस मंत्र में उपासना का क्या रूप होना चाहिए ? यह दिखलाते हुए कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को वन रूप से समझे अर्थात् वह भगवान् परब्रह्म परमात्मा ऐसे हैं कि जिनका सम्यक् रूप से अर्थात् अच्छी तरह से भजन करना चाहिए। परमशान्ति देने वाले अर्थात् वननीय वही हैं। परमशान्ति उन्हीं से मिल सकती है। इस प्रकार जो मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को जानता है, उसके प्रति समस्त संसार के प्राणी हिंसा भाव को छोड़ देते हैं, प्रेम करने लगते हैं और आशा एवं विश्वास करते हैं कि ये महात्मा हमारी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर सकते हैं।

व्याख्या—मन्त्र ४, ५, ६ की व्याख्या एक साथ की जा रही है। खण्ड एक के चार से लेकर आठ मंत्रों तक 'नेदं यदिदमुपासते' यह चौथा पाद प्रत्येक मन्त्र का समान रूप से है। इस पाद का अर्थ यह है कि जिसकी साधारण लोग वाणी इत्यादि के द्वारा उपासना करते है, वह ब्रह्म नही है। इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाणी, मन, नेत्र, कर्ण और प्राण के द्वारा जिसकी उपासना की जाती है वह ब्रह्म नही है। वह तो कुछ और ही है। प्रश्न होता है कि तो क्या उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना किसी प्रकार से हो ही नही सकती ? ऐसा समझ पड़ता है कि इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर यह उपनिषद् या ऋषि इन तीन मन्त्रों के द्वारा देते हुए प्रतीत होते है। छठे मंत्र में 'उपासितव्यम्' अर्थात् उपासना करना चाहिए यह शब्द स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। अतः ऐसा समझ पड़ता है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना हो सकती है और करना भी आत्म-कल्याण के लिए आवश्यक है।

उपासना सगुण और निर्गुण दो प्रकार की होती है। वैदिक धर्म में निर्गुण उपासना बड़ी कठिन मानी गई है। श्रीकृष्ण जी नें गीता मे कहा है 'ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते, सर्वत्रगमचिन्त्यम् च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥ (अ० १२ श्लोक ३) अर्थात् जो अक्षर अनिर्देश्य अव्यक्त, सर्वत्रगं, अचिन्त्य और कूटस्थ अचल और ध्रुव की उपासना करते है इत्यादि। फिर इसी अध्याय के पाँचवे श्लोक में कहते हैं, 'क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त-चेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिदुखं देहवद्भिरवाप्यते॥' अर्थात् जिनका चित्त अव्यक्त में आसक्त है, उनको अधिक क्लेश सहना होता है; क्योंकि जिनको शरीर का अध्यास है, उनको अव्यक्त गति बड़े दु-ख से प्राप्त होती है। अस्तु उपनिषदों से भी पुराणों तथा शास्त्रों से भी और वेदों से भी सगुण उपासना आवश्यक समझी गई है। संसार में भी देखने से प्रतीत होता है कि यदि हम किसी

जीवित मनुष्य की प्रशंसा या उपासना करना चाहते है तो उनके रूप, नाम और गुणों का ही वर्णन करते है। यद्यपि यह सब शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु चूकि इस शरीर से मुख्यतया उसी जीवन अर्थात् आत्मा का ग्रहण होता है। वैसे ही मूर्ति द्वारा भगवान् की उपासना परम आवश्यक है।

चौथे मन्त्र मे रूप और नाम का ग्रहण होना अर्थात् प्राप्त होना समझ पड़ता है। उसमें बिजली का चमकना और पलक का मारना इन दोनों बातों से आँख का गुण प्रकट होता है। आँख से रूप ही देखा जाता है। परन्तु जैसा रामायण मे कहा गया है 'रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने ॥' अर्थात् रूप तो प्रत्यक्षरूप में देख पड़ता है परन्तु नाम के बिना जाने पहिचान नही हो सकती। इससे ऐसा समझ पड़ता है कि रूप और नाम का निर्देश अर्थात् सकेत—इशारा इस मन्त्र के द्वारा होता है। परन्तु ध्यान करने के समय आँख मुँद जाती है और थोड़ी-थोड़ी देर मे बाहर आता हुआ सा जान पड़ता है। इसी बात को इन दोनों मंत्रों ४ और ५ में समझाया गया है। मन्त्र ४ मे अधिदैवत उपासना है और मन्त्र ५ में अध्यात्म उपासना है। पाँचों ज्ञान-इन्द्रियाँ जिन-जिन विषयों का ज्ञान करती है, वह सब बाहरी देवताओं से सम्बद्ध है और मन जब वह बाहरी इन्द्रियों को वशीभूत करके अन्तर्दृष्टि होता है और बुद्धि मे प्रवेश करता है—यह अध्यात्म ज्ञान है।

चौथे मन्त्र में आँख को सभी बाह्य इन्द्रियों का उपलक्षण अर्थात् सबसे श्रेष्ठ माना गया है। रूप और नाम की उपासना बिना आँख के नहीं हो सकती। तब भगवान् की उपासना किस प्रकार सोची जाय? इसी बात को दिखलाया गया है। जैसे वर्षा के दिनों में घनघोर घटा छाई हुई है। बिजली बार-बार चमकती है तो दीख पड़ता है कि बिजली एक ओर चमकी और अदृश्य हो गई और फिर दूसरी ओर, फिर तीसरी ओर। इसी प्रकार अनेक बार चमकती है और अदृश्य हो जाती है। जैसे आँखों के पलक भांजने में हमे नए-नए प्रकार से, बार-बार दिखाई देता है और अदृश्य हो जाता है, वैसे ही सब मूर्तियों मे भगवान् के अनन्त रूप और नाम है। जैसे मूर्तियों के दर्शन के बाद मन में अनेक प्रकार की भावनायें उत्पन्न होती और विलीन हो जाती हैं, वैसे ही मन में जो-जो भावनायें पैदा होती है उन सभी में जो एकत्व की भावना है, जिसके द्वारा संकल्प मन में होते है, वह परब्रह्म परमात्मा अध्यात्म दृष्टि से देखे जाते है। यही अधिदैवत और अध्यात्म उपासना है।

मन्त्र ६ में नाम शब्द प्रत्यक्ष रूप से आया है। यह कहा गया है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना "वन" इस नाम से करनी चाहिए और फिर कहा है कि जो कोई इस बात को इसी प्रकार ठीक-ठीक समझता है उसकी सभी जीव वाञ्छा या इच्छा करते हैं अर्थात् आशा करते है कि वह हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण करेगा।

उपासना करने के समय रूप हो और नाम हो, तथा नाम के साथ नाम का अर्थ भी हो, उसी अर्थ का चिन्तन मन एकाग्रता से जब करता हुआ ध्यान करता है तब भगवान् का ध्यान किस भावना से करे? इसका उत्तर यह जान पड़ता है कि मन से इस प्रकार की भावना करे कि जितनी भी इच्छायें तथा अभिलाषायें अपने लिए तथा संसार के कल्याण के लिए होती हैं उन सबका आदि उसी परब्रह्म परमात्मा से है और वही इन सबको पूरा भी करेगा।

मंत्र ६ में 'तद्वनम्' शब्द आया है। तद् वनम् इति उपासितव्यम् 'वह' 'वन' स्वरूप है इस प्रकार उसकी उपासना करे। 'वन' अर्थात् 'वन्यते तद् वनम्' जो वननीय है, वही वन है। अर्थात् आनन्द स्वरूप है। आनन्द ही वननीय है। 'भगवान् आनन्दस्वरूप है'—इस प्रकार से भगवान् की उपासना करे।

वन का अर्थ जल भी है। जो गर्मी के ताप को शान्त करता है। हृदय को शान्ति देता है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' (अध्याय ७-८ श्लोक) अर्थात् जल में जो रस है, वह मैं हूँ। और तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली सप्तम अनुवाक में ऐसा पद आया है। 'यद् वै तद् सुकृतं रसो वै सः'। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। अर्थात् निश्चय ही जो वह सुकृत है वही रस है। निश्चय करके यह जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दित होता है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि वन शब्द से उसी रसों के रस को आनन्दों के आनन्द को 'वन' अर्थात् प्राप्त होने योग्य वस्तु रूप से कहा गया है।

Most certainly Brahma is happiness and glory personified and It should be worshiped as such. He also knows Brahma like this is loved by all creatures for he is expected to fulfil all their desires.

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उदनिषदमब्रूमेति ॥७॥

पदच्छेद—उपनिषदम्, भोः, ब्रूहि, इति, उक्ता, ते, उपनिषद्, ब्राह्मीम्, वाव, ते, उपनिषदम्, अब्रूम, इति ॥७॥

अन्वय—(एतत्) (सर्वं) (श्रुत्वा) (शिष्यः) (पुनः) (प्रार्थयते) भो (गुरो) (मह्यम्) (अधुना) उपनिषदम् ब्रूहि (गुरुः) (कथयति) ते उपनिषद् उक्ता, इति (परम्) ब्राह्मीम् वाव ते उपनिषदम् अब्रूम इति ॥७॥

शब्द	अर्थ
(एतत्)	(यह)
(सर्व)	(सब)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)
(शिष्यः)	(शिष्य)
(पुनः)	(फिर)
(प्रार्थयते)	(प्रार्थना करता है।)
भोः	आप महाराज हैं।
(गुरो)	(गुरु जी)
(मह्यम्)	(मुझसे)
(अधुना)	(अब)
उपनिषदम्	उपनिषद को अर्थात् इस उपनिषद् के रहस्य को
ब्रूहि	कहिए।
(गुरुः)	(गुरु)
(कथयति)	(कहता है)
ते	तुमसे
उपनिषद्	उपनिषद् का रहस्य
उक्ता	बतलाई गई है।
इति	यह
(परम्)	(परन्तु)
ब्राह्मीम्	ब्रह्म-सम्बन्धी
वाव	ही
ते	तुमसे
उपनिषदम्	उपनिषद्
अब्रूम	कहता हूँ
इति	यह।

भावार्थ—इस प्रकार उपदेश को सुन करके शिष्य गुरु से फिर पूछता है कि अब आप कृपा करके इस उपनिषद् के गूढ रहस्य को बतला दीजिए। यह सुनकर गुरु जी ने कहा कि यह जो अब तक हमने तुमसे उपनिषद् का ज्ञान कहा है, यही इसका गूढ रहस्य भी है। परन्तु अब हम तुमसे यह बतलाते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा का जिससे साक्षात् सम्बन्ध है, उस उपनिषद् का क्या रहस्य है ॥७॥

The disciple asks the teacher to reveal to him the knowledge about Brahma. The teacher says that he has already revealed knowledge about Brahma but now he will say as to how to attain it.

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥८॥

पदच्छेद—तस्यै, तपः, दमः, कर्म, इति, प्रतिष्ठा, वेदाः, सर्वाङ्गानि, सत्यम्, आयतनम् ॥८॥

अन्वय—तस्यै (तस्याः) (उपनिषदः) तपः, दमः, कर्म इति प्रतिष्ठा, (तथा) वेदाः, सर्वाङ्गानि सत्यम् आयतनम् ॥८॥

शब्द	अर्थ
तस्यै	उसके लिए
(तस्याः)	(उसके)
(उपनिषदः)	(उपनिषद् के)
तपः	तपस्या, (गीता अध्याय १७ श्लोक १४ से १९ तक)
दमः	इन्द्रिय दमन
कर्म	कर्म (गीता अध्याय १६ श्लोक २८)
इति	यह
प्रतिष्ठा	आश्रय, आधार
(तथा)	(और)
वेदाः	वेद, चार वेद
सर्वाङ्गानि	सब अंग, (वेद के ६ अंग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष)
सत्यम्	सत्य
आयतनम्	घर, आधार।

भावार्थ—उसके अर्थात् उपनिषद् की प्राप्ति के लिए तपस्या ५ ज्ञान इन्द्रियाँ, ५ कर्म इन्द्रियाँ और मन इनका दमन और कर्म इसकी प्रतिष्ठा है अर्थात् आधार है अर्थात् आश्रय है। चारों वेद, वेद के सब अंग और सत्य ये इसके आयतन अर्थात् घर या घेरा है।

व्याख्या—मन्त्र ७ व ८ की व्याख्या साथ की जाती है। मन्त्र ७ में शिष्य ने पूछा कि कृपा करके इस उपनिषद् का रहस्य बतलाइए। गुरु ने उत्तर दिया कि इस उपनिषद् के रहस्य को तो हम बता चुके। परन्तु अब हम ब्रह्म-सम्बन्धी उपनिषद् अर्थात् ब्रह्मविद्या को बतलावेगें। इससे भाव यह समझ पड़ता है कि ऋषि ने सगुण उपासना का रूप इन ३ मन्त्रों से सूत्ररूप से वतलाया जिसका कि विशेषरूप से वर्णन और अध्ययन और भी अनेक उपनिषदों में, भागवत आदि पुराणों में एवं वेदों में भी आया है। परन्तु यह सगुण उपासना अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह ब्रह्म विद्या प्राप्ति का एक साधन है। मन के द्वारा चिन्तन बहुत देर नक हो सकता है। समाधि लग जाने पर सहस्रों वर्षों तक इसकी अवधि हो सकती है। तब मन का आधार केवल ब्रह्मविद्या रह जाती है। वह ब्रह्मविद्या इस प्रकार सगुण उपासना करते-करते किस प्रकार से प्राप्त हो सकती है? इसका उत्तर आठवे मन्त्र में दिया गया है—ऐसा समझ पड़ता है। ऋषि कहते हैं कि उस ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा के लिए तप, दम और कर्म आवश्यक हैं। परन्तु उसका आयतन अर्थात् घर वेद और वेद के सब अंग और सत्य है। इसका भाव कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि उस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के उपाय इस संसार में आकर के जीव के लिए यह है कि कर्म को करें और जो कुछ कष्ट सहना पड़े, सहे—यह तप है और इन कर्म और तपस्या के द्वारा इन्द्रियों को जीते अर्थात् इन्द्रिय-जित हो जाय। मन के सहित सभी इन्द्रियों को अपने वश में कर ले। कर्म इन सब का आधार है। वह कर्म क्या है? इसका ज्ञान कैसे हो? इसके उत्तर में ऋषि कहते है कि वेद के द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त करें; परन्तु वेद के समझने के लिए वेद के सभी अगों का जानना आवश्यक है। बिना उसके जाने वेद का अर्थ ठीक-ठीक नहीं लग सकता। बिना लगाम के घोड़े की तरह वेद का अर्थ बिना उन सब अंगों को जाने, मनमाना कर देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और अनधिकारियों के लिए वह आक्षेपरूप हो जाता है और थोड़े ज्ञानवालों के लिए मति-भ्रम का यथेष्ट अर्थात् काफी साधन हो जाता है। वेद के अंग कितने हैं? इसका वर्णन मुण्डकोपनिषद् में मुख्यरूप से शिक्षा कल्पो

व्याकरणम् निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषमिति—यह ६ अर्थात् शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष के वर्णन किए गये है। परन्तु वेद कहीं ३ माने गये है तथा कही ४। यजुर्वेद के दो अंग माने गये—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। वेद के भी तीन विशेष अंग माने गए है। १—मन्त्र भाग, २—उपनिषद्, ३—ब्राह्मण भाग। इन सबको बिना जाने कर्म का क्या स्वरूप है? समझना कठिन है। इस मन्त्र में सत्य शब्द जो आया है उससे तात्पर्य और भी ग्रन्थों का होना जान पड़ता है। मनुस्मृति, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, पुराण आदि का समावेश इसी सत्य शब्द के अन्दर आया हुआ जान पड़ता है। गीता में भी श्रीकृष्ण जी ने सोलहवें अध्याय के २३ और २४ श्लोकों में कहा है—यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परां गतिम्॥ तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तम् कर्मकर्तुमिहार्हसि॥ अर्थात् जो मनुष्य शास्त्र की विधि को छोड़कर मनमाने रूप से व्यवहार करता है, न तो उसको सुख, न सिद्धि और न परमगति प्राप्त होती है। इसलिए शास्त्र तुम्हारे लिए प्रमाण है। क्या करना चाहिए? क्या न करना चाहिए?—इस प्रकार के प्रश्न होने पर शास्त्र ही प्रमाण है और शास्त्र के विधान को जानकर के कर्म को करना चाहिए।

Penance, control of senses and actions, are necessary for acquiring the divine knowledge of Braham Upnishad. It is only on account of them that the divine knowledge is made stable. The four 'Vedas', the six Angas of the Vedas i.e. Siksha etc. and other standard religious literatures, such as Mansumriti etc. are the abade of the Divine knowledge.

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गलोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥९॥

पदच्छेद—यः, वा, एताम्, एवम्, वेद, अपहत्य, पाप्मानम्, अनन्ते, स्वर्गे, लोके, ज्येये, प्रतितिष्ठति, प्रतितिष्ठति ॥९॥

अन्वय—यः (पुरुषः) वा एताम् (उपनिषदम्) एवम् (प्रकारेण) (उक्तम्) (यथावत्) वेद (सः) पाप्मानम् अपहत्य अनन्ते ज्येये स्वर्गलोके प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥९॥

शब्द	अर्थ
यः	जो
(पुरुषः)	(पुरुष)
वा	निश्चय करके
एताम्	इस
(उपनिषदम्)	(उपनिषद को)
एवम्	इस
(प्रकारेण)	(प्रकार से)
(उक्ताम्)	(कही हुई)
(यथावत्)	(ठीक-ठीक)
वेद	जानता है
(सः)	(वह)
पाप्मानम्	पाप को
अपहत्य	नष्ट करके
अनन्ते	अनन्त
ज्येये	ज्येष्ठ-श्रेष्ठ
स्वर्गलोके	स्वर्ग लोक में
प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है यानी स्थिर हो जाता है ।
प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है ।

भावार्थ—यह बात निश्चित है कि जो भी मनुष्य इस उपनिषद् को ऋषि अथवा गुरु से कही हुई को ठीक-ठीक वैसी ही समझता है, वह पाप को नष्ट करके अनन्त और सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक अर्थात् ब्रह्मानन्द में प्रतिष्ठित हो जाता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती ।।९।।

व्याख्या—इस अन्तिम मन्त्र में यह कहा गया है कि जो कोई भी इस उपनिषद् को जैसा कि इसमें कहा गया है, जान लेता है, वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और सबसे श्रेष्ठ अनन्त स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । इसमें विशेष रूप से विचारणीय यह बात है कि 'जो इस उपनिषद् को इस प्रकार से जानता है और पाप को नष्ट कर देता है'—इनका भावार्थ क्या है ? ज्ञान एक तो यथार्थ होता है, दूसरा अयथार्थ होता है और तीसरा विपरीत ज्ञान होता है । इन्हीं को गीता में सात्त्विक, राजसिक और तामसिक ज्ञान कहते है । ये बुद्धि के भाव हैं । जो बात जैसी है उसको उस प्रकार

समझ लेना यथार्थ ज्ञान कहा जाता है और जो बात जैसी है उसको कुछ ठीक न समझना यह अयथार्थ ज्ञान है और जो बात जैसी नहीं है, उसको वैसी समझना यह विपरीत ज्ञान है। योगदर्शन में इन्ही को प्रमाण, विपर्यय और विकल्प रूप से कहा गया है। जैसे एक आदमी को देखा और स्मरण आ गया कि यह अमुक व्यक्ति है यह तो यथार्थ ज्ञान हुआ और यदि उसी मनुष्य को देखा और नाम याद न आया परन्तु इतना स्मरण है कि इसको हमने देखा है—यह अयथार्थ ज्ञान है और यदि किसी को देखकर समझ पड़ा कि जानते हैं, देखा है, यह अमुक व्यक्ति है, परन्तु उसको कभी देखा नही, न जानते है, केवल समानता से अनुमान किया—यह विपरीत ज्ञान है। एक दूसरा उदाहरण इस प्रकार समझिए कि श्रीगीता जी की जिस प्रकार अनेक टीकायें हुई है और उनमें बहुत बड़ा मतभेद भी है। परन्तु सब अपने को ठीक ही समझते है। उनमें से कुछ तो यथार्थ है और कुछ अयथार्थ तथा कुछ विपरीत है। यद्यपि उनको अपने हृदय मे सच्चा विश्वास है। इसी प्रकार इस उपनिषद् को जो ठीक-ठीक समझता है, वह कौन है? कौन हो सकता है?—इसका थोड़ा सा निर्देश भी करते है। वह यह है कि वह पाप से मुक्त हो जाता है।

इस विषय में आत्म-प्रवंचना (self deception) की भी संभावना है और अधिकतर होती भी है अर्थात् जिस मनुष्य के हृदय में यह विश्वास हो गया कि हममें पाप नही है। सचमुच पाप का अस्तित्व तीनों कालो में एवं किसी देश में भी न था, न है, न होगा और कोई भी उससे लिप्त नहीं हो सकता। पाप का विचार केवल भ्रममात्र है। इस बात में उसको दृढ़ निष्ठा हो जाती है और दृढ़ विश्वास भी हो जाता है। वह अपने से भिन्न कुछ नहीं देखता। सब स्वयं आत्मस्वरूप हो जाता है और सम्पूर्ण संसार को आत्मस्वरूप ही देखता है और उसका यह भाव कभी विचलित नहीं होता। कुछ ऐसा इसका भाव समझ पड़ता है।

Any person who knows the divine knowledge of Brahma Upnishad correctly, in the manner described here in, he gets rid of his sins and becomes firmly established in boundless, blissfull and most glorious Brahma. He becomes firmly established.

शान्तिपाठ

ओम् आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म

निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ओम् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पदच्छेद—ओम्, आप्यायन्तु, मम, अङ्गानि, वाक्, प्राणः, चक्षुः, श्रोत्रम्, अथो, बलम्, इन्द्रियाणि, च, सर्वाणि। सर्वं, ब्रह्म, औपनिषदम्, अहम्, ब्रह्म, निराकुर्यां, मा, मा, ब्रह्म, निराकरोत्, अनिराकरणम्, अस्तु, अनिराकरणम्, मे, अस्तु। तत्, आत्मनि, निरते, ये, उपनिषत्सु, धर्माः, मयि, सन्तु, ते, मयि, सन्तु ॥

ओम् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अन्वय—ओम् मम वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम्, बलम् इन्द्रियाणि अथो सर्वाणि च अङ्गानि आप्यायन्तु। सर्वं ब्रह्म औपनिषदम् अस्ति, अहं ब्रह्म मा निराकुर्यां ब्रह्म मा मा निराकरोत्, अनिराकरणं अस्तु मे अनिराकरणं अस्तु। तदा (तत्) आत्मनि निरते उपनिषत्सु ये धर्माः (सन्ति) ते (धर्माः) मयि सन्तु ते (धर्माः) मयि सन्तु।

शब्द	अर्थ
ओम्	ब्रह्म का नाम है
मम	मेरे
वाक्	वाणी
प्राणः	प्राण
चक्षुः	आँख
श्रोत्रम्	कान
बलम्	बल
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ
अथो	तथा, साथ-साथ
सर्वाणि	सब
च	और
अङ्गानि	अङ्ग
आप्यायन्तु	परिपुष्ट हों यानी मजबूत हो जाँय।
सर्वं	सब

शब्द	अर्थ
ब्रह्म	ब्रह्म, परब्रह्म परमात्मा
औपनिषदम्	उपनिषद से प्रतिपादित अर्थात् वर्णन किया हुआ।
अस्ति	है।
अहम्	मैं
ब्रह्म	ब्रह्म, परब्रह्म परमात्मा
मा	मुझको
मा	नहीं
निराकरोत्	अस्वीकार करे यानी परित्याग न करे
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना यानी परित्याग न करना
मे	मेरा
अस्तु	होवे,
तदा	तब
तत्	तब···वह
आत्मनि	आत्मा में अर्थात् आत्मा के
निरते	निरत होने पर
उपनिषत्सु	उपनिषदों में
ये	जो
(धर्माः)	(धर्म)
(सन्ति)	(होते है)
ते	वे
(धर्माः)	(धर्म)
मयि	मुझमे
सन्तु	होवें
ते	वे
(धर्माः)	(धर्म)
मयि	मुझमें
सन्तु	होवे।

भावार्थ—हमारे सभी अंग वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक, मानसिक, एवं बुद्धि आदि का बल, सारी इन्द्रियां ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जायँ। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का प्रतिपादन करती है। भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा यानी आप का तिरस्कार न

करूँ अर्थात् आप को भूल न जाऊँ। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवन्! आप भी मुझको भूल न जायँ। आप मेरा त्याग न करें। साराशं यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे। कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने आत्मा का सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मो का वर्णन उपनिषदों में किया गया है वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अंग हो जायं। सभी मेरे अंग हो जायं। त्रिविध ताप की शान्ति हो। इस शान्ति पाठ में वाणी, प्राण, चक्षु और कान इन चारों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। फिर यह भी कहा गया है कि बल भी प्राप्त हो। सारांश यह है कि सभी इन्द्रियाँ अपने राजा मन के साथ परिपुष्ट हों। इतना ही नहीं, शरीर के सारे अंग परिपुष्ट हों। यहाँ पहले पहल वाक् आया है। संसार में जितनी वस्तुयें है उनमे नाम और रूप ही प्रधान है। परन्तु "रूप ज्ञान नहि नाम विहीना।" इस चौपाई के अनुसार नाम श्रेष्ठ है जो केवल वाणी के द्वारा लिया जा सकता है। इसलिए वाक् का प्रथम उल्लेख उचित है। बिना प्राण शक्ति के वाणी उच्चारण नहीं कर सकती। आँख के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता और जो संसार को नहीं देख सकता, जो जन्मान्ध है वह रूप का अनुमान भी नहीं कर सकता। कान के बिना गुरु के मुख से उपदेश का श्रवण नहीं हो सकता। शारीरिक बल के बिना मनुष्य कुछ भी काम नहीं कर सकता तथा किसी इन्द्रिय अथवा शरीर के किसी भी अंग में विकलता, असह्य वेदना होने पर भी कोई मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। कोई साधना नहीं कर सकता। इस कारण से इस शान्ति पाठ का प्रथम विराम अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। दूसरे विराम में "सर्वं ब्रह्मोपनिषदम्" यह पद यह सूचित करता है कि ब्रह्म-ज्ञान पूर्ण रूप से उपनिषद्-ज्ञान पर निर्भर है। अतः प्राप्त है एवं उचित है। द्वितीय विराम के शेष अंश में भगवान् की सगुण उपासना का रूप दर्शाया गया है। भक्त और भगवान् में भेद है। भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है। इस बात की आवश्यकता दिखाई है। तीसरे विराम में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि मेरा मन आप में पूर्ण रूप से लग जाय और संसार से पूर्ण रूप से विरक्त हो जाय और ऐसा होने पर उपनिषदों में जिन-जिन धर्मो का वर्णन किया गया है, वे भी सब मुझे प्राप्त हों। इस शान्तिपाठ से ध्वनि यह निकलती है कि भगवान् से भक्त प्रार्थना करे। उसमें पूर्ण रूप से विश्वास एवं श्रद्धा हो कि भगवान् सभी इच्छाओं को पूर्ण करेंगे।

'आप्यायन्तु' अर्थात् पूर्ण रूप से परिपुष्ट हों यानी आँख, कान, वाणी इत्यादि में दिव्य शक्ति पर्यन्त सिद्धि प्राप्त हो अर्थात् दिव्य श्रवण, दिव्य दर्शन इत्यादि की सिद्धियाँ प्राप्त हों। समाधि सविकल्प अवस्था में इन सब सिद्धियों की प्राप्ति होती है। यदि साधक उन सब सिद्धियों के उपभोग मे लग गया तो पथभ्रष्ट हो गया। यदि इनका उपभोग न करके साधना करता रहा तो निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है। ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त होती है जिसके द्वारा वेदशास्त्र आदि धर्म-ग्रन्थों को उनके तात्त्विक अर्थ को जान करके संसार का सभी प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म परमात्मा के यथार्थ रूप को जान सकता है। जिसने वैदिक धर्म-ग्रन्थों को नहीं जाना, जो संसार में दक्ष कुशल नहीं, वह परब्रह्म परमात्मा को नहीं जान सकता। अस्तु, वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र इनकी विशेषता और भी वैदिक ग्रन्थों से सिद्ध होती है। संध्योपासन में ऐसा मंत्र आया है"'पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतं······अर्थात् आखों से १०० वर्ष तक देखें, १०० वर्ष तक जीवे, मरे नहीं, १०० वर्ष तक कान से सुने और १०० वर्ष तक बोलने की शक्ति रहे। आँख, प्राण, कान और वाणी इन चारों का वर्णन इस मंत्र में आया है। 'ओम् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः' ॥, इस मन्त्र में जोर इस बात पर दिया गया है कि कानों से 'भद्र' अर्थात् कल्याणसूचक शब्द सुनें तथा कल्याणमय रूप आँखों से देखें और वाणी के द्वारा आपकी स्तुति करें और सारे अंगों से जीवनपर्यन्त आपकी सेवा करें। इन्द्रियों और सारे शरीर से दो प्रकार के कर्म हो सकते हैं—एक अच्छे और एक बुरे। बुरे कर्म पापमय होते हैं और अच्छे पुण्यमय होते हैं। अतः इनका प्रयोग केवल भगवान् के लिए ही किया जाय। भगवान् के प्रतिकूल न किया जाय। कानों से सुनना, आँखों से देखना और वाणी से स्तुति करना--यही तीन बातें कही गई हैं। मन और प्राण का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया। परन्तु केनोपनिषद् में पहले मन का ही वर्णन आया है। बिना मन के न तो कोई आँख से देख सकता है न कोई कानों से सुन सकता है। न कोई भगवान् की स्तुति ही कर सकता है। बिना प्राण-शक्ति के मन भी कुछ नहीं कर सकता। अस्तु, प्राण और मन का समावेश समझ लेना चाहिए अर्थात् प्राण और मन इसमें मिले हुए हैं। यद्यपि अलग से नहीं कहे गए हैं। शुभम् भूयात्। कल्याण होवे ॥

May my limbs, speech, vital force, eyes, ears as also strength and all the organs become fully well developed. Whatever is revealed in the upnishads relates to Brahma. May I not deny Brahma and may not Brahma deny. Let there be no spurning of me by Brahma and let there be no rejection of Brahma by me. May all the virtues that are laid down in the upnishads repose in me who, being detatched from the world, am engaged in the realisation of self. May they repose in me. May they repose in me.

Om peace ! Om peace !! Om peace !!!

APPENDIX 1.

—:संग्रहकर्ता व लेखक का परिचय:—

आहिताग्नि पंडित यमुनाप्रसाद जी त्रिपाठी का जन्म १९०६ ई० में बाँदा जिला के मरका थाने में हुआ जहाँ आप के पिता पंडित शिवशंकरलाल त्रिपाठी जी उस समय थानेदार थे। आप की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू व फारसी की ही हुई; क्योंकि उस समय अदालतों और सरकारी दफ़्तरों में उर्दू का ही प्रचार था। आप की शिक्षा बाँदा, मथुरा, हमीरपुर, व प्रयाग जिलों मे हुई और सन् १९२७ ई० में आप प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास करके डेढ़ साल तक पुलिस ट्रेनिंग स्कूल, मुरादाबाद में शिक्षा प्राप्त करके सन् १९३० ई० में पुलिस विभाग में सबइन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हुए।

सन् १९३० ई० से १९३९ ई० तक आप फैजाबाद जिले में सबइन्सपेक्टर रहे। जहाँ कि आज भी उस जिले की जनता श्री त्रिपाठी जी का नाम दीन-दुःखियों की सहायता करने व बदमाशों को दण्ड देने के लिए लिया करती है। आप को डाकुओं के पकड़ने में कई पुरस्कार मिले और एक बहुत नामी डाकू की गोली का मुक़ाबला करके उसको पकड़ने में त्रिपाठी जी को सरकार से वीरता के लिए इण्डियन पुलिस पदक सन् १९३८ ई० में प्राप्त हुआ।

सन् १९३९ ई० में श्री त्रिपाठी पुलिस इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त होकर सी० आई० डी० विभाग में विदेशी लोगों की देख-भाल करने के लिए देहरा-दून में तैनात किये गये। वहाँ पर आपने बहुत सराहनीय कार्य किया और एक जर्मन जासूस का पता लगाया।

सन् १९४१ ई० में श्री त्रिपाठी डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस नियुक्त होकर लखनऊ में ए-आर-पी के विभाग में काम करने मे लगाये गए और आपने पूरे लखनऊ शहर में ए-आर-पी का इन्तज़ाम किया। इसके पश्चात् श्री त्रिपाठी जी सिविक गार्ड के इन्चार्ज बनाये गये। सन् १९४२ ई० में श्री त्रिपाठी जी गाजीपुर में इन्तजाम करने के लिये नियुक्त किये गये।

सन् १९४३ ई० में आप को सरकार ने लखनऊ शहर का कोतवाल बनाया जहाँ उन्होंने १९४६ ई० तक जनता की ओर सरकार की सेवा करने

में अच्छा नाम कमाया है। लखनऊ शहर के लोग अब तक श्री त्रिपाठी जी के इन्तजाम की सराहना करते और उदाहरणार्थ उनका नाम लोग लेते हैं। सन् १९४४ ई० में श्री त्रिपाठी जी ने एक और बहुत बड़े डाकू को उसके पूरे गिरोह के साथ गोली का मुकाबला करके पकड़ा जिसमें आप बाल-बाल बच गये। सरकार ने आप की बहादुरी के लिये किंग्स पुलिस पदक प्रदान किया।

सन् १९४६ ई० में सरकार ने लखनऊ में ही श्री त्रिपाठी जी को पुलिस कप्तान नियुक्त किया और सन् १९४७ ई० में आप लखनऊ जिले के सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस नियुक्त हुए। आप ने लखनऊ में ऐसा अच्छा इन्तजाम किया कि जब कानपुर और दूसरे आस पास के जिलों में हिन्दू मुस्लिम दंगे हो रहे थे और मार काट हो रही थी, लखनऊ में पत्ता भी नहीं खड़का। इसके लिये श्री रफी अहमद किदवई ने जो उस समय गृह मंत्री थे आप की बहुत सराहना की थी।

सन् १९४८ ई० में जब मुरादाबाद जिले में हिन्दू-मुसलिम बलवे हो रहे थे और डकैतियों की भरमार थी, आप इन्तजाम करने के लिये मुरादाबाद में भेजे गये। आपने वहाँ पहुँच कर ऐसा इन्तजाम किया कि हिन्दू-मुसलिम दंगे बन्द हो गये और डकैत पकड़ कर जेल में बन्द कर दिये गये।

सन् १९५० ई० में श्री त्रिपाठी जी वाराणसी के सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस बनाये गये। वहाँ आप ने बहुत सराहनीय काम किया ''आप को सन् १९४९ ई० में ही इण्डियन पुलिस सर्विस में नियुक्त किया गया और आप ही के शासनकाल में काशी राज्य वाराणसी जिले में लीन हुआ।

सन् १९५२ ई० से सन् १९६२ ई० तक श्री त्रिपाठी जी उत्तर-प्रदेश के गुप्तचर विभाग की सुरक्षा शाखा के इन्चार्ज रहे और यहाँ आपने बहुत सराहनीय कार्य किया। जिसके लिये सरकार ने सन् १९६१ ई० में श्री त्रिपाठी जी को सराहनीय सेवाएँ करने का पुलिस पदक प्रदान किया। सन् १९५४ ई० में श्री त्रिपाठी जी प्रयाग कुम्भ मेला में सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस थे। श्री त्रिपाठी जी ने अगस्त सन् १९६२ ई० में पुलिस विभाग से रिटायर होकर पेन्सिल ले ली, लेकिन नवम्बर १९६२ में चीन की लड़ाई शुरू होने से उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री जी ने फिर से गुप्तचर विभाग में सुरक्षा का काम संभालने के लिए आप को बुला लिया और आप इस समय उत्तर प्रदेश की सुरक्षा विभाग के इंचार्ज हैं।

आहिताग्नि श्री पंडित यमुना प्रसाद त्रिपाठी कायुम शाखायी सामवेदीय, सरया तिवारी, सरयूपारीण ब्राह्मण हैं। आप के पितामह श्री कुंजबिहारी राम त्रिपाठी के पितामह को गोरखपुर जिले के सरया ग्राम से प्रताप गढ़ के धार्मिक क्षत्री एक यज्ञ में आचार्य होने के लिये लाये ओर वे यज्ञ की समाप्ति पर अझारा ग्राम में प्रतापगढ़ जिले में रह गये। उनके वंशज प्रतापगढ़ जिलेके कुण्डा तहसील में कई गावों में बस गये हैं। श्री त्रिपाठी जी के निवास-स्थान ग्राम महेवा मलकिया वाकनावाँ है। आप के चचेरे पितामह आचार्य पं० कौशिल्या-नन्दन जी तिवारी और आप के चाचा पंडित सीताराम त्रिपाठी शास्त्री प्रताप-गढ़ जिले के प्रसिद्ध विद्वानों में थे। श्री त्रिपाठी जी के श्वसुर ब्रह्मचारी श्री पंडित श्यामसुन्दर द्विवेदी व्याकरण के अद्वैत विद्वान् थे और उनके पढ़ाये हुए बहुत पंडित प्रयाग व प्रतापगढ़ में हैं। श्री त्रिपाठी जी की धर्मपत्नी श्रीमती शान्तादेवी एक योग्य गृहणी है जो सौम्य भाव और धर्म की मूर्ति हैं। आप ही के अनुरोध और प्रेरणा से श्री त्रिपाठी में धार्मिक संस्कार जागृत हुए हैं। श्री त्रिपाठी जी के ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय श्री पंडित कामता प्रसाद त्रिपाठी के सुपुत्र श्री गयाप्रसाद त्रिपाठी जी पी० ए० सी० में कम्पनी कमाण्डर थे जो १९६२ ई० में रिटायर होकर ग्राम कनावाँ में जो सीर है उसकी देखभाल करते हैं।

श्री त्रिपाठी जी के पाँच पुत्र और पाँच पुत्रियाँ है। प्रथम पुत्र श्री दुर्गा-प्रसाद त्रिपाठी सरकारी माल विभाग में नायब तहसीलदार हैं। द्वितीय पुत्र डाक्टर श्री सुरेन्द्रप्रसाद त्रिपाठी एम. बी. बी एस सरकारी मेडिकल विभाग में डाक्टर तथा इनकी धर्मपत्नी श्रीमती शान्ती त्रिपाठी एम. बी. बी. एस भी लेडी डाक्टर हैं और इस समय पौड़ी में जनाने अस्पताल की इंचार्ज हैं।

श्री त्रिपाठी जी के तृतीय पुत्र कैप्टेन श्री जगदीशप्रसाद त्रिपाठी भारतीय फौज में कप्तान है : चतुर्थ पुत्र श्री महेन्द्र त्रिपाठी इन्टरमीडियेट में और पंचम पुत्र श्री व्रजेन्द्र त्रिपाठी नाइन्थ स्टैण्डर्ड में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। श्री त्रिपाठी जी की प्रथम पुत्री श्रीमती विद्यादेवी डा० श्री गोपाल मिश्र एम० बी० बी० एस, डी० सी एच० को ब्याही हैं, द्वितीय पुत्री श्रीमती विमला देवी श्री प्रभाशंकर मिश्र ऐडवोकेट को ब्याही हैं तथा तृतीय पुत्री श्रीमती कलावती देवी बी० एस सी० श्री कृष्णचन्द्र ऐडवोकेट को ब्याही हैं। चतुर्थ पुत्री कुमारी सावित्री त्रिपाठी बी० एस सी और पंचम पुत्री कुमारी गायत्री अभी शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

श्री त्रिपाठी जी के चचेरे पितामह आचार्य कौशिल्यानन्दन तिवारी के सुपुत्र श्री पं० श्यामाशंकर तिवारी जी गोगहर ग्राम में रहते हैं और चाचा श्री पं० सीताराम त्रिपाठी के भतीजे श्री बालमुकुन्द त्रिपाठी व दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी ग्राम इटौरा म रहते हैं।

यह है संक्षिप्त परिचय श्री त्रिपाठी जी का व उनके परिवार का जो इस ग्रन्थ के संग्रहकर्त्ता व लेखक है।

कार्तिक पूर्णिमा सं० २०१९
लक्षमणपुरी
उत्तरप्रदेश

आचार्य ऋ० शं० त्रिपाठी अग्निहोत्री
दूधविनायक, वाराणसी

APPENDIX 2

English version of
KENA-UPANISHAD
by Dr. S. Radha Krishnan

SECTION I

Mantra 1. By whom willed and directed does the mind light on its objects ? By whom commanded does life the first, move ? At whose will do (people) utter this speech ? And what God is it that prompts the eye and the ear ?

Mantra 2. Because it is that which is the ear of ear, the mind of the mind, the speech, indeed of the speech, the breath of the breath, the eye of the eye, the wise, giving up (wrong notions of their self-sufficiency) and departing from this world, become immortal.

Mantra 3. There the eye goes not, speech goes not, nor the mind we know not, we understand not how one can teach this.

Mantra 4. Other, indeed, is it than the known ; and also it is above the unknown. Thus have we heard from the ancients who have explained it to us.

Mantra 5. That which is not expressed through speech but that by which speech is

expressed; that, verily, know thou, is Brahman, not what (people) here adore.

Mantra 6. That which is not thought by the mind but by which, they say, the mind is thought (thinks), that, verily, know thou, is Brahman and not what (people) here adore.

Mantra 7. That which is not seen by the eye but by which the eyes are seen (see); that, verily, know thou, is Brahman and not what (people) here adore.

Mantra 8. That which is not heard by the ear but by which the ears are heard (hear); that, verily, know thou, is Brahman and not what (people) here adore.

Mantra 9. That which is not breathed by life, but by which life breathes; that, verily, know thou, is Brahman and not what (people) here adore.

SECTION 2

Mantra 1. If you think that you have understood Brahman well, you know it but slightly, whether it refers to you (the individual self) or to the gods. So then is it to be investigated by you (the pupil) (even though) I think it is known.

Mantra 2. I do not think that I know it well; nor do I think that I do not know it. He who among us knows it, knows it and he, too, does not know that he does not know.

Mantra 3. To whomsoever it is not known, to him it is known: to whomsoever it is known, he does not know. It is not understood by those who understand it; it is understood by those who do not understand it.

Mantra 4. When it is known through every state of cognition, it is rightly known, for (by such knowledge) one attains life eternal. Through one's own self one gains power and through wisdom one gains immortaility.

Mantra 5. If here (a person) knows it, then there is truth, and if here he knows it not, there is great loss. Hence seeing or (seeking) (the Real) in all beings, wise men become immortal on departing from this world.

●

SECTION 3

Mantra 1. Brahman, it is said, conquered (once) for the gods, and gods gloried in that conquest of Brahman. They thought, ours, indeed, is this victory and ours, indeed, is this greatness.

Mantra 2. (Brahman) indeed knew this (conceit of theirs). He appeared before them. They did not know what spirit it was.

Mantra 3. They said to Agni, 'O Jata-vedas, find this out, what this spirit is.' 'Yes' (said he).

Mantra 4. He hastened towards it and it said to him, 'Who art thou ?' (Agni) replied, 'I am Agni indeed, I am Jata-vedas'.

Mantra 5. He again asked, 'What power is there in thee ?' Agni replied, 'I can burn everything whatever there is on earth'.

Mantra 6. (He) placed (a blade of) grass before him saying, 'Burn this'. He went towards it with all speed but could not burn it. He returned thence and said. 'I have not been able to find out what this spirit is'.

Mantra 7. Then they said to Vayu (Air), 'O Vayu, find this out, What this spirit is'. 'Yes' (said he).

Mantra 8. He hastened towards it, and it said to him 'Who art thou ?' Vayu replied, 'I am Vayu indeed, I am Matarisvan'.

Mantra 9. (He asked Vayu) 'What power is there in thee ?' (Vayu) replied, 'I can blow off everything whatever there is on earth'.

Mantra 10. He placed before him (a blade of) grass saying, 'Blow off'. Vayu went

towards it with all speed but could not blow it off. He returned thence and said, 'I have not been able to find out what this spirit is'.

Mantra 11. Then they said to Indra, 'O Maghavan, find this out what this spirit is'. 'Yes' (said he). He hastened towards it (but) it disappeared from before him.

Mantra 12. When in the same region of the sky, he (Indra) came across a lady, most beautiful, Uma, the daughter of Himavat. and said to her, 'What is this spirit ?'.

SECTION 4

Mantra 1. She replied, 'This is Brahman, to be sure, and in the victory of Brahman, indeed, do you glory thus.' Then only did he (Indra) know that it was Brahman.

Mantra 2. Therefore, these gods, Agni, Vayu and Indra, surpass greatly other gods, for they, it was, that touched Brahman closest, for they, indeed, for the first time knew (it was) Brahman.

Mantra 3. Therefore, Indra surpasses greatly, as it were, other gods. He, indeed, has come into close contact with Brahman. He, indeed, for the first time knew that (it was) Brahman.

Mantra 4. Of this Brahman, there is this teaching : this is as it were, like the lightning which flashes forth or the winking of the eye. This teaching is concerning the gods.

Mantra 5. Now the teaching concerning the self. It is this toward which the mind appears to move ; by the same (mind, one remembers constantly ; volition also likewise.)

Mantra 6. Brahman, the object of all desire, that, verily, is what is called the dearest of all. It is to be meditated upon as such (tadvanam). Whoever knows it thus, him all beings seek.

Mantra 7. (The pupil) 'Sir, teach (me) the secret (Upanisad)'. (The teacher) : 'The secret has been taught to thee ; we have taught thee the secret relating to Brahman'.

Mantra 8. Austerities, self-control and work are its support ; the Vedas are all its units ; truth is its abode.

Mantra 9. Whoever knows this, he, indeed, overcoming sin, in the end, is firmly established in the Supreme world of heaven ; yes, he is firmly established.

APPENDIX 3

English version of
KENA-UPANISHAD
by Swami Gambhiranandaji

PART I

Mantra 1. Whilled by whom does the directed mind go towards its object? Being directed by whom does the vital force, that precedes all, proceed (towards its duty)? By whom is this speech willed that people utter. Who is the effulgent being who directs the eyes and the ears?

Mantra 2. Since He is the Ear of the ear, the Mind of the mind, the Speech of speech, the Life of life, and the Eye of the eye, therefore the intelligent men, after giving up (self-identification with the senses) and renouncing this world, become immortal.

Mantra 3. The eye does not go there, nor speech. nor mind. We do not know (Brahman to be such and such); hence we are not aware of any process of instructing about It.

Mantra 4. "That (Brahamn) is surely different from the known; and, again, It is above the unknown"-thus we heard (the utterance) of the ancient (teachers) who explained It to us.

Mantra 5. That which is not uttered by speech, that by which speech is revealed, know that alone to be Brahman, and not what people worship as an object.

Mantra 6. That which man does not comprehend with the mind, that by which, they say, the mind is encompassed, know that to be Brahman and not what people worship as an object.

Mantra 7. That which man does not see with the eyes, that by which man perceives the activities of the eye, know that alone to be Brahman and not what people worship as an object.

Mantra 8. That which man does not hear with the ear, that by which man knows this ear, know that to be Brahman and not this that people worship as an object.

Mantra 9. That which man does not smell with the organ of smell that by which the organ of smell is impelled, know that to be Brahman and not what people worship as an object.

PART II

Mantra 1. (Teacher): If you think, "I have known Brahman well enough" then you have known only the very little expression that It has in the human body and

the little expression that It has among the gods. Therefore Brahman is still to be deliberated on by you. (Disciple) : "I think (Brahman) is known".

Mantra 2. "I do not think, 'I know (Brahman) well enough' ; (i.e. I consider) 'Not that I do not know : I know and I do not know as well'. He among us who understands that utterance, 'Not that I do not know : I know and I do not know as well,' knows that (Brahman)".

Mantra 3. It is known to him to whom It is unknown ; he does not know to whom It is known. It is unknown to those who know well ; and known to those who do not know.

Mantra 4. It (i.e. Brahman) is really known when It is known with (i.e. as the Self of) each state of consciousness, because thereby one gets immortality. (Since) through one's own Self is acquired strength, (therefore) through knowledge is attained immortality.

Mantra 5. If one has realised here, then there is truth ; if he has not realised here, then there is great destruction. The wise ones, having realised (Brahman) in all beings, and having turned away from this world, become immortal.

PART III

Mantra 1. It was Brahman, indeed, that achieved victory for the sake of the gods, In that victory, that was in fact Brahman's, the gods became elated.

Mantra 2. They thought, "Ours, indeed, is this vioctory; ours, indeed, is this glory". Brahman knew this pretention of theirs. To them He did appear. They could not make out about that thing, as to what this Yaksa (venerable Being) might be.

Mantra 3. They said to Fire, O Jataveda, find out thoroughly about this thing as to what this Yaksa is". He said, "So be it".

Mantra 4. To It he went. To him It said, "Who are you?" He said, "I am known as Fire, or I am Jataveda".

Mantra 5. (It said), "What power is there in you, such as you are?" (Fire said), "I can burn up all this that is on the earth".

Mantra 6. (Yaksa) placed a straw for him saying, "Burn this". (Fire) approached the straw with the power born of full enthusiasm. He could not consume it. He returned from the Yaksa (to tell the gods), "I could not ascertain It fully as to what this Yaksa is".

Then (the gods) said to Air, "O Air, find out thoroughly about this thing as to what this Yaksa is". (Air said), "So be it".

To It he went. To him It said, "Who are you?" He said, "I am known as Air, or I am Matarisva".

(It said), "What power is there in you, such as you are?" (Air said), "I can blow away all this that is on the earth".

(Yaksa) placed a straw for him saying, "Take it up". Air approached the straw with all the strength born of enthusiasm. He could not take it up. He returned from that Yaksa (to tell the gods), "I could not ascertain it fully as to what this Yaksa is".

Then (the gods) said to Indra, "O Maghavan, find out thoroughly about this thing, as to what this Yaksa is". (He said), "So be it". He (Indra) approached It (Yaksa). From him (Yaksa) vanished away.

In that very space he approached the superbly charming Uma Haimavati. To Har (he said), "What is this Yaksa?"

PART IV

Mantra 1. "It was Brahman", said She. "In Brahman's victory, indeed, you became elated thus". From that (utterance) alone, to be sure, did Indra learn that It was Brahman.

Mantra 2. Therefore, indeed, these gods, viz Fire, Air, and Indra did excel other gods, for they touched It most proximately, and they knew It first as Brahman.

Mantra 3. Therefore did Indra excel the other deities. For he touched It most proximately, in as much as he knew It first as Brahman.

Mantra 4. This is Its instruction (about meditation) through analogy. It is like that which is (Known as) the flash of lightning, and It is also as though the eye winked. These are (Illustrations) in a divine context.

Mantra 5. Then is the instruction through analogy in the context of the (individual) self: This known fact, that the mind seems to go to It (Brahman), and the fact that It (Brahman) is repeatedly remembered through the mind; as also the thought (that the mind has with regard to Brahman).

Mantra 6. That Brahman is well-known as the one adorable to all creatures; (hence)

It is to be meditated on with the help of the name tadvana. All creatures surely pray to anyone who meditates on It in this way.

Mantra 7. (Disciple): "Sir, speak of the secret knowledge". (Teacher): "I have told you of the secret knowledge; I have imparted to you that very secret knowledge of Brahman.

Mantra 8. Concentration, cessation from sense-objects, rites, etc., are its legs; the Vedas are all its limbs; truth is its abode.

Mantra 9. Anyone who knows this thus, he, having dispelled sin, remains firmly seated in the boundless blissful, and highest Brahman. He remains firmly seated (there).

APPENDIX 4

English version of
KENA-UPANISHAD
by Pt. Ganga Prasadji, M.A., M.R.A.S.,
Retired Chief Justice :

FIRST SECTION

Mantra 1. By whom ordained does the mind go towards its wished for object, by whom ordained does the first breath or Prana go forth ; by whom ordained they utter this wished for speech ; which deva does verily direct the eye, and the ear ?

Mantra 2. He (Brahma or Atma) is ear of the ear, mind of the mind, speech of the speech, verily He is life of life and eye of the eye. The wise (on knowing Him) are freed and on departing from this world become immortal (i.e. attain mukti).

Mantra 3. The eye does not reach there, nor does the speech reach, nor the mind. We do not know, nor comprehend Him, so as to be able to teach or explain Him. He is different from the known and also the unknown. Thus have we heard from the ancients (i.e. Rishis) who have taught Him to us.

Mantra 4. Who cannot be expressed by speech, but by whose power speech is uttered, Him alone know thou as God, not this which this speech worships (or expresses).

Mantra 5. Who does not think by the mind, but by Whose power the mind thinks, Him alone know thou as God, not this which this mind worships (or thinks about).

Mantra 6. Who does not see with eyes, by whose power the eyes see, That alone known thou as God, not this which the eye worships (or sees).

Mantra 7. Who does not hear with ear, by whose power that ear hears this, Him alone know thou as God, not this which this ear worships (or hears).

Mantra 8. Who does not breathe with breath, by whose power breath is directed; Him alone know thou as God, not this which this Prana worships (or breathes).

●

SECOND SECTION

Mantra 1. If thou thinkest "I know God well". then thou certainly knowest but little of God's nature. What thou knowest of God, and what is known about Him

among Devas, (Learned people), I think that it is indeed worth thinking about.

Mantra 2. I do not believe that I know Him well, nor that I do not know Him. I know Him. He among us who says he knows Him (fully) knows Him not; he who says he does not know Him fully, knows Him.

Mantra 3. He is understood by those who think they do not understand Him; he does not know who says he understands Him. He is unknown to those who profess to know Him, and is known to those who do not porfess to know Him.

Mantra 4. Knowledge of God derived by constant meditation leads to immortality. By self exertion man obtains strength, by knowledge (of God) he obtains immortality.

Mantra 5. If a man knows Him in this life, then well and good if he does not know Him here, then it is a great calamity. The wise having realised Him (as pervading) all things, become immortal on departing from this world.

THIRD SECTION

Mantra 1. God verily obtained victory for devas or good forces (against evil forces). The

devas felt proud in this victory of God. They thought "this voctory is our own, this is our own greatness".

Mantra 2. God verily knew about their pride and appeared to them. They did not know who this adorable one (Yaksha) was.

Mantra 3. They said to Agni "O, all knower! find him out, who this adorable one is". Agni answered "let it be so".

Mantra 4. He approached (Yaksha) who said to him, "Who are thou"? Agni replied, "I am Agni or I am Jataveda (All knower)".

Mantra 5. (Yaksha said) "What power is in thee so styled?" (Agni answered) "I can burn all that is on this earth".

Mantra 6. (The Yaksha) put a straw before him (Agni), and said: "Burn this". Agni approached it with all its might, but was not able to burn it. He at once desisted from it, and (said to devas). "I was unable to find out who this adorable one is".

Mantra 7. Then they said to Vayu, "O, Vayu find this out, who this adorable one is".

Mantra 8. He (Vayu) approached (yaksha who said): "Who art thou" Vayu answered, "I am Vayu, indeed, I am Matarishva. (mover in space).

Mantra 9. (The Yaksha said): "What power is there in thee so styled?" (Vayu answered) "I can blow or carry away all that exists on this earth".

Mantra 10. (The Yaksha) put a straw to him (and said) "blow this away". He approached it with all his strength, but was not able to carry it away, He desisted from it, (and said to devas): "I am unable to find out who this adorable one is".

Mantra 11. Then they said to Indra, "O. Mighty one! find this out who this adorable one is". "Be it so", (said Indra). He approached Yaksha who disappeared from there.

Mantra 12. In that very space he came near a fair woman, Uma well-adored and decked in gold. He asked her, "who is this adorable one".

FOURTH SECTION

Mantra 1. She (Uma) said, "He is verily God; verily in the victory of God you have your greatness'. Thence Indra knew that it was God.

Mantra 2. Therefore, these devas i.e. Agni, Vayu & Indra are as it were superior to

other devas. For they approached him nearest, and verily they first knew it was God.

Mantra 3. Therefore, Indra also is superior to other devas. He approached him nearest, he verily first knew him to be God.

Mantra 4. This is his teaching in the physical world when the lightning flashes forth and the eyes are closed, which excite wonder.

Mantra 5. Now (His teaching) in the mental world when this mind goes forth as it were, it recollects, and constantly reflects.

Mantra 6. He is verily known as, "Vanam" or Happiness. He who thus knows him verily all beings love him.

Mantra 7. (The pupil says to the teacher) O sir, tell us divine knowledge. (The teacher replies) Divine knowledge has been told thee, certainly we have told thee divine knowledge.

Mantra 8. Austerity, control of senses, and good actions are the foundation of Upanishad or divine knowledge; the Vedas are its bodies and truth is its abode.

Mantra 9. He who acquires this divine knowledge, he certainly having destroyed sin, resides and stays in the greatest endless blissful state (i.e. moksha).

APPENDIX 5

English version of KENA UPANISHED by Sri Aurobindo

FIRST PART

Mantra 1. By whom missioned falls the mind shot to its mark? By whom yoked does the first life-breath move forward on its paths? By whom impelled is this word that men speak? What god sets eye and ear to their workings?

Mantra 2. That which is hearing behind the hearing, mind of the mind, the word behind the speech, that too is life of the life-breath, sight behind the sight. The wise find their release beyond and passing forward from this world they become immortal.

Mantra 3. There sight attains not, nor speech attains, nor the mind. We know not nor can we discern how one should teach of That; for it is other than the known, and it is above beyond the unknown; so have we heard from the men of old who have declared That to our understanding.

Mantra 4. That which remains unexpressed by the word, that by which the word is

expressed, know that indeed to be the Brahman, not this which men follow after here.

Mantra 5. That which thinks not by the mind, that by which the mind is thought, know That indeed to be the Brahman, not this which men follow after here.

Mantra 6. That which sees not with the eye, that by which one sees the eye's seeings, know That indeed to be the Brahman, not this which men follow after here.

Mantra 7. That which hears not with the ear, that by which hearing is heard, know That to be the Brahman, not this which men follow after here.

Mantra 8. That which breathes not with the breath, that by which the life-breath is led forward in its paths, know That indeed to be the Brahman, not this which men follow after here.

SECOND PART

Mantra 1. If thou thinkest that thou knowest It well, little indeed dost thou know the form of the Brahman. That of it which is thou, that of it which is in the gods, this thou hast to think out. I think It known.

Mantra 2. I think not that I know It well and yet I know that It is not unkown to me. He of us who knows it, knows That; he knows that It is not unknown to him.

Mantra 3. He by whom it is not thought out, has the thought of It; he by whom It is thought out, knows It not. It is unknown to the discernment of those who discern of It, by those who seek not to discern of It, It is discerned.

Mantra 4. When it is known by perception that reflects it, then one has the thought of It, for one finds immortality; by the self one finds the force to attain and by the knowledge one finds immortality.

Mantra 5. If here one comes to that knowledge, then one truly is; if here one comes not to the knowledge, then great is the perdition. The wise distinguish That in all kinds of becomings and they pass forward from this world and become immortal.

THIRD PART

Mantra 1. The Eternal conquered for the gods and in that victory of the Eternal the gods came to greatness. This was what

they saw, "Ours is this victory, ours is this greatness'.

Mantra 2. That marked this thought of theirs; to them That became manifest. They could not discern of That, what was this mighty Daemon.

Mantra 3. They said to Agni, "O Knower of all Births, this discern, what is this mighty Daemon". He said, "So be it".

Mantra 4. He rushed upon That; It said to him, "Who art thou? "I am Agni", he said "and I am the Knower of all Births".

Mantra 5. "Since such thou art, what is the force in thee?" "Even all this I can burn, all this that is upon the earth".

Mantra 6. That set before him a blade of grass; "This burn". He went towards it with all his speed and he could not burn it. Even there he ceased, even thence he returned; "I could not discern of That, what is this mighty Daemon".

Mantra 7. Then they said to Vayu, 'O Vayu, this discern, what is this mighty Daemon". He said, "So be it".

Mantra 8. He rushed upon That; It said to him, "Who art thou?" "I am Vayu", he said, "and I am he that expands in the Mother of things".

Mantra 9. "Since such thou art, what is the force in thee ?" "Even all this I can take for myself, all this that is upon the earth".

Mantra 10. That set before him a blade of grass ; "This take". He went towards it with all his speed and he could not take it. Even there he ceased, even thence he returned "I could not discern of That, what is this mighty Daemon".

Mantra 11. Then they said to Indra, "Master of plenitudes, get thou the knowledge, what is this mighty Daemon". He said, "So be it". He rushed upon That. That vanished from before him.

Mantra 12. He in the same ether came upon the the Women, even upon Her who shines out in many forms, Uma daughter of the snowy summits. To her he said, "What was this mighty Daemon ?"

FOURTH PART

Mantra 1. She said to him, "It is the Eternal. Of the Eternal is this victory in which ye shall grow to greatness'. Then alone he came to know that this was the Brahman.

Mantra 2. Therefore are these gods as it were beyond all the other gods, even Agni

and Vayu and Indra, because they came nearest to the touch of That.

Mantra 3. Therefore is Indra as it were beyond all the other gods because he came nearest to the touch of That, because he first knew that it was the Brahman.

Mantra 4. Now this is the indication of That,—as is this flash of the lightning upon us or as is this fallıng of the eye-lid, so in that which is of the gods.

Mantra 5. Then in that which is of the Self,—as the motion of this mind seems to attain to That and by it afterwards the will in the thought continually remembers It.

Mantra 6. The name of That is "That Delight;" as That Delight one should follow after It. He who so knows That, towards him verily all existences yearn.

Mantra 7. Thou hast said "Speak to me Upanishad"; spoken to thee is Upaishad. Of the Eternal verily is the Upanishad that we have spoken.

Mantra 8. Of this knowledge austerity and self-conquest and works are the foundation, the Vedas are all its limbs, truth is its dwelling-place.

Mantra 9. He who knows this knowledge, smites evil away from him and in that vaster world and infinite heaven finds his foundation, yea, he finds his foundation.

———

APPENDIX 6

English version of

KEN UPANISHAD

by Swami Sharvananda

PART ONE

Mantra 1. Disciple: Who impels the mind to alight on its objects? Enjoined by whom does the chief prana (life) proceed to function? At whose behest do men utter speech? What Intelligence, indeed, directs the eyes and the ears?

Mantra 2. Preceptor: It is the Atman, the Spirit, by whose power the ear hears, the eye sees, the tongue speaks, the mind understands and life functions. The wise man separates the Atman from these faculties, rises out of sense-life and attains immortality.

Mantra 3. The eye cannot approach It, neither speech, nor mind. We do not, therefore, know It, nor can we teach it. It is different from what is known, and It is beyond what is unknown. Thus have we heard from the ancients who instructed us upon It.

Mantra 4. What speech cannot reveal, but what reveals speech,-know That alone as

Brahaman. and not this that people worship here.

Mantra 5. What mind does not comprehend, but what cognizes the mind know That to be Brahman, and not this that people worship here.

Mantra 6. What sight fails to see, but what perceives sight, know That alone as Brahman, and not this that people worship here.

Mantra 7. What hearing fails to grasp, but what perceives hearing-know That alone as Brahman, and not this hat people worship here.

Mantra 8. What life does not enliven, but what directs life,-know That alone as Brahman, and not this that people worship here.

PART TWO

Mantra 1. Preceptor : If you think that you know Brahman well, then you know little ; for the form of Brahman you see as conditioned in living beings and deities is but a trifle. Therefore, you should enquire further about Brahman.

Mantra 2. I do not think I know well. But not that I do not know ; I know too.

Who amongst us comprehends It both as the Not-unknown and as the Known-he comprehends It.

Mantra 3. Preceptor : He understands It, who conceives It not ; and he understands It not, who conceives It. It is the 'unknown to the man of true knowledge, but to the ignorant It is the 'known'.

Mantra 4. Indeed, he attains immortality, who intuits It in and through every modification of the mind. Through the Atman he obtains real strength, and through Knowledge, immortality.

Mantra 5. For one who has realized It here in this world, there is true life. For one who has not, great is the destruction. Discerning the Atman in every single being, the wise man rises from sense-life, and attains immortality.

PART THREE

Mantra 1. Preceptor : It is said that Brahman once won a victory for the gods (over the demons). Though the victory was due to Brahman, the gods became elated by it, and thought : Verily this victory has been won by us. The glory of it is ours.

Mantra 2. Brahman knew their vanity, and He appeared before them : but they did not understand who that adorable Spirit was.

Mantra 3. They said to Agni (Fire) : 'O Jatavedas (all-knower), find out who this adorable Spirit is'. He agreed.

Mantra 4. Agni hastened to the Spirit. The Spirit asked him who he was, and Agni replied : 'Verily, I am Agni, the omniscient'.

Mantra 5. "What power resides in such as you ?' asked the Spirit. 'Why, I can burn up everything, whatever there is on earth', replied Agni.

Mantra 6. The Spirit put down a straw before him and said, 'Burn it !' Agni dashed at it ; but was unable to burn it. So he returned to the gods, saying, 'I could not find out who that adorable Spirit is.

Mantra 7. Then the gods said to Vayu (Wind) : 'O Vayu,, find out who this adorable Spirit is'. He agreed.

Mantra 8. Vayu hastened to the Spirit. The Spirit asked him who he was, and Vayu replied, 'Verily, I am Vayu, the king of air'.

Mantra 9. 'What power resides in such as you ?' asked the Spirit. 'Why, I can blow

away everything, whatever there is on earth', said Vayu.

Mantra 10. The Spirit put down a straw before him and said, 'Blow that away !' Vayu dashed at it, but was unable to move it. So he returned to the gods, saying, 'I could not find out who that adorable Spirit is'.

Mantra 11. Then the gods said to Indra (the chief of gods) : 'O Maghavan, find out who this adorable Spirit is'. He agreed and hastened towards the Spirit, but the Spirit disappeared from his view.

Mantra 12. And in that very spot he beheld a a woman, wondrously fair-the daughter of the snowy mountain Himavat. And of Her he asked, 'Who could this adorable Spirit be ?'

PART FOUR

Mantra 1. Preceptor : 'Brahman !' She exclaimed, 'Indeed, through Brahman's victory have you attained greatness !' Then alone he understood that the Spirit was Brahman.

Mantra 2. Therefore, verily, these gods-Agni, Vayu and Indra-excel the other gods ; for they approached the Spirit nearest,

and they were the first to know Him as Brahman.

Mantra 3. And therefore, indeed, Indra excels other gods for he approached the Spirit nearest, and he was the first to know Him as Brahman.

Mantra 4. This is the description of Brahman; Lo! He is what illumines the lightning; He is what makes one wink. This with regard to His manifestation as cosmic powers.

Mantra 5. Now as regards His description from the point of view of His manifestation within the Self. Because of Him the mind knows the external world, and remembers and imagines things.

Mantra 6. Brahman is well-known as Tadvana, the One deserving to be worshipped as the Atman of all living beings. So it is to be meditated upon as Tadvana. All beings love him who knows it thus.

Mantra 7. Disciple: Sir', teach me the saving knowledge. Preceptor: The saving Knwledge has been imparted to you. Verily, we have imparted the saving knowledge of Brahman to you.

Mantra 8. Austerity, restrain, dedicated work-these are the foundations of it (the saving knowledge of the Upanishads) The Vedas are all its limbs. Truth it its abode.

Mantra 9. Verily, he who knows it (Upanishad) thus, destroys sin, and is established in Brahman, the boundless, the highest, and the blissful-yea, he is establihed in it.

APPENDIX 7

केन उपनिषद् का हिन्दी अनुवाद

(पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का किया हुआ)

(१) किसकी इच्छा से प्रेरित हुआ मन दौड़ता है ?
किससे नियुक्त हुआ पहिला प्राण चलता है ?
किससे प्रेरित हुई यह वाणी बोलते हैं ?
कौनसा भला देव आखों और कानों को चलाता है ?

(२) वह कान का कान और मन का मन है। जो निश्चय से वाणी की वाणी है, वही प्राण का प्राण है और आँख का आँख है।
अत्यन्त स्वतंत्र होते हुए, इस लोक से पृथक होकर, बुद्धिमान् लोग अमर होते हैं।

(३) वहाँ आँख नहीं पहुँचती, न वाणी जाती है और न मन, इसलिये हम उसको जानते नहीं।
हमें उसका ऐसा ज्ञान नहीं है कि जिससे हम उसका उपदेश कर सकें।
ज्ञात वस्तु से वह भिन्न ही है, और अज्ञात से भी भिन्न है।
ऐसा पूर्व आचार्यों से सुनते आये हैं, जो हमको उसका उपदेश करते आये हैं।

(४) वाणी द्वारा जिसका प्रकाश नहीं होता, परन्तु—
जिससे वाणी का प्रकाश होता है, वही ब्रह्म है, ऐसा तू जान।
जिसकी (वाणी द्वारा) उपासना की जाती है वह (ब्रह्म) नहीं है।

(५) जो मनसे विचार नहीं करता, परन्तु जिससे मन विचार करता है, ऐसा कहते हैं।
वही ब्रह्म है ऐसा तू समझ, जिसकी (मन द्वारा) उपासना होती है वह (ब्रह्म) नहीं है।

(६) जो आंख से नहीं देखता, परन्तु जिससे आंख देखती हैं।
वही ब्रह्म है, ऐसा तू जान, जिसकी (नेत्र द्वारा) उपासना होती है, वह (ब्रह्म) नहीं है।

(७) जो कान से नहीं सुनता, परन्तु जिससे यह कान सुन सकता है।
वही ब्रह्म है, ऐसा तू समझ, जिसकी (कर्ण द्वारा) उपासना होती है
वह (ब्रह्म) नहीं है।

(८) जो प्राण से जीवित नहीं रहता, परन्तु जिससे प्राण चलता रहता है।
वही ब्रह्म है, ऐसा तू जान, जिसकी (प्राणद्वारा) उपासना होती है,
वह (ब्रह्म) नहीं है।

(९) यदि (ब्रह्म) उत्तमता से ज्ञात हुआ है ऐसा तू मानता है, तो—
(तुझे वह) निश्चय से अज्ञात ही है। जो इस ब्रह्म का रूप तू जानता
है। और जो इस (ब्रह्म का रूप) तू देवों में देखता है, वह—
तेरा जाना हुआ, (पुनः) विचार करने योग्य ही है, ऐसा मैं
मानता हूँ।

(१०) (वह) सुगमता से जानने योग्य है, ऐसा मै नहीं मानता।
"मै नहीं जानता" अथवा "मैं जानता हूँ" ऐसा (भी वह ब्रह्म)
नहीं है।
जो हमारे में से (समझता है कि) उसको जान लिया, उसको वह नहीं
समझा है। तथा—
(जो समझता है) मै नहीं समझा, उसने समझा है।

(११) जिसको नहीं समझा है वही जानता है, परन्तु जिसको समझा है वह
नहीं जानता है। तात्पर्य—
ज्ञानियों के लिये अज्ञेय और अज्ञानियों के लिये विज्ञात-सा प्रतीत
होता है।

(१२) प्रत्येक बोध से जो विदित होता है वही निश्चित ज्ञान है जिससे निश्चय
से अमरत्व प्राप्त होता है। आत्मा से बल प्राप्त होता है और ज्ञान
से अमरत्व मिलता है।

(१३) यहाँ ही यदि ज्ञान हुआ, तो ठीक है। अन्यथा
यहाँ यदि ज्ञान न हुआ, तो बड़ी विपत्ति होगी।
बुद्धिमान् प्रत्येक भूत में ढूंढ कर, इस लोक से चले जाने के बाद अमर
होते हैं।

(१४) ब्रह्म ने निश्चय से देवों के लिये विजय किया।
उस ब्रह्म के विजय से सब देव बड़े हो गये।

वे समझने लगे कि, हमारा ही यह विजय है और हमारा ही यह महिमा है ।

(१५) उस (ब्रह्म) ने इन (देवों) का (भाव) जान लिया, और—
उनके सामने वह प्रकट हुआ । तब "यह पूज्य कौन है" यह वे जान न सके ।

(१६) वे (देव)अग्नि से कहने लगे कि जातवेद ! यह जानो कि यह पूजनीय क्या है ।

(१७) ठीक है ऐसा कहकर, वह दौड़ता हुआ गया । उसे (ब्रह्म) बोला कि कौन है । (तू) ।
मै अग्नि हूँ, जातवेद निश्चय से मैं हूँ, ऐसा उस (अग्नि) ने उत्तर दिया।

(१८) तुझमें क्या बल है ? (ब्रह्म ने पूछा) । इस पृथिवी पर जो कुछ है, यह सब मैं जला दूंगा (अग्नि ने उत्तर दिया) ।

(१९) उसके सम्मुख घास रख दिया, और (ब्रह्म ने कहा कि) इसको जलाओ । (अग्नि) उसके पास गया (परन्तु) सब वेग से उसको जला न सका । वह (अग्नि) वहाँ से ही पीछे हटा जो यह पूज्य है, इसको जानने में मै असमर्थ हूँ ।

(२०) पश्चात् देवों ने वायु से कहा कि हे वायो ! यह जानो कि यह यक्ष क्या है ? 'ठीक है'—ऐसा वायु ने कहा ।

(२१) वह दौड़ा । उसे ब्रह्म ने पूछा—तू कौन है । वह बोला—मै वायु हूँ । मै मातरिश्वा हूँ ।

(२२) तेरे में क्या बल है ? ऐसा पूछने पर उसने उत्तर दिया कि जो कुछ पृथ्वी पर है वह सब मै उठा सकता हूँ ।

(२३) यक्ष ने उसके सामने घास रखा और कहा कि इसको उठाओ । वह उसके पास गया, परन्तु सब वेग से भी वह उसे उठा न सका । इसलिये वह वहाँ से ही लौटा, और उसने देवों से कहा कि यह कौन यक्ष है, मै नहीं जान सकता ।

(२४) पश्चात् (देवों ने) इन्द्र से कहा कि हे धनसंपन्न ! कौन यह यक्ष है यह जानो । ठीक है, ऐसा कहकर इंद्र उसके पास चला गया । परन्तु उसके सामने से (वह यक्ष) गुप्त हो गया ।

(२५) उसी आकाश में अति शोभायमान हैमवती उमा नामक स्त्री के सन्मुख वह (इन्द्र) आ गया :
कौन यह यक्ष है, ऐसा उस स्त्री से उसने पूछा ।

(२६) उस (स्त्री) ने कहा कि वह ब्रह्म है और :
ब्रह्म के ही विजय में इस प्रकार आप बड़े हो गये ।
इस प्रकार, वह ब्रह्म है, ऐसा उसको ज्ञान हुआ ।

(२७) इसलिये ये देव अन्य देवों से अधिक श्रेष्ठ बने ।
क्योंकि अग्नि, वायु, इन्द्र ये ही (देव) इस समीप स्थिर (ब्रह्म) को देख सके ।
वे ही इसको "यह ब्रह्म है" ऐसा पहिले जान गये ।

(२८) इसलिये ही इन्द्र अन्य देवों से अधिक श्रेष्ठ बना । क्योंकि वह इस समीप स्थित (ब्रह्म) को देख सका । और वही इसको "यह ब्रह्म है" ऐसा पहिले जान गया ।

(२९) उसका यह संदेश है । जो यह बिजली की चमकाहट है अथवा जो आखों का खुलना है । यह देवताओं में रूप है ।

(३०) वह आत्मा में देखिये, जो यह मन चंचल-सा है । जिससे इसका स्मरण करता है । और बारंबार संकल्प होता है ।

(३१) वह (ब्रह्म) निश्चय से (वनं) सबका वंदनीय अर्थात् उपास्य प्रसिद्ध ही है ।
इसलिये (वनं) उपास्य समझकर उसकी उपासना करनी चाहिए ।
जो यह इस प्रकार जानता है, उसको सब प्राणिमात्र चाहते हैं ।

(३२) आचार्य जी ! उपनिषद् का उपदेश कीजिये, ऐसा (पूछा था इसलिये) तुझे उपनिषद् का उपदेश किया । तुझे ब्रह्मज्ञानमय उपनिषद् का कथन किया है ।

(३३) उस उपनिषद् के लिये तप, दम और कर्म का ही आधार हैं । और वेद ही उसके सब अंग हैं । तथा सत्य ही उसका स्थान है ।

(३४) जो इस (विद्या) को इस प्रकार जानता है । वह सब पापों को दूर कर, अनन्त श्रेष्ठ प्राप्तव्य स्वर्ग लोक में निवास करता है ।

APPENDIX 8

केनोपनिषद् का हिन्दी अनुवाद

(स्वामी दयानन्द जी, भारतधर्म महामण्डल वाराणसी का किया हुआ)

शान्तिपाठ

हमारे समस्त अंग, वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल तथा इन्द्रियाँ वृद्धिलाभ करें। उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्म हमारे निकट प्रतिभात हो, मैं ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ तथा ब्रह्म भी हमको परित्याग न करे। उसके निकट हमारा तथा हमारे निकट उसका सर्वदा नियत सम्बन्ध विद्यमान रहे और आत्मनिष्ठ मुझमें उपनिषद् कथित धर्म प्रकाशित हो।

मन्त्रार्थ

मन किसकी इच्छा से प्रेरित होकर (अपने विषय में) गमन करता है? श्रेष्ठ प्राण किसके द्वारा नियुक्त होकर गमनागमन करता है? किसकी इच्छा से प्रेरित होकर लोग शब्दोच्चारण करते हैं? तथा कौन देवता इस चक्षु और कर्ण को अपने अपने विषय में नियुक्त करते हैं? ॥१॥

जो श्रोत्र का श्रोत्र (प्रवर्त्तक), मनका मन और वाक्य का भी वाक्य है, वही प्राण का भी प्राण है, उसको चक्षु का चक्षु स्वरूप जानकर बुद्धिमान् गण शरीरादि में आत्मबुद्धि परित्याग करके मृत्यु के अनन्तर अमृतत्वलाभ करते हैं, अर्थात् अमर हो जाते हैं ॥२॥

वहाँ (ब्रह्म में) चक्षु नहीं जाता है, वाक् नहीं जाता है। मन भी नहीं जाता, हम उनको नहीं जानते है और आचार्यगण इस ब्रह्म तत्त्व को किस प्रकार शिष्य को उपदेश करते है सो भी नहीं समझते हैं। वह स्थूल से पृथक् है और सूक्ष्म से भी पृथक् है। जिन्होंने हमारे निकट इस तरह की व्याख्या की थी, उन्हीं पूर्वाचार्यो से यह बात सुनी है ॥३–४॥

जो वाक्य द्वारा प्रकाशित नहीं होते, किन्तु वाक्य जिनकी सहायता से उच्चारित होता है, तुम उन्हीं को ब्रह्म करके जानो। लोग जिसकी "इदं" रूप से उपासना करते हैं, वह वास्तव में ब्रह्म नहीं है ॥५॥

तुमने यदि समझा हो कि मैंने ब्रह्म रूप को अच्छी तरह जान लिया है, तो निश्चय समझना कि, यह जानना अल्प अर्थात् असम्पूर्ण है। क्योंकि ब्रह्म जो रूप है अथवा अधिदेवस्वरूप है, दोनों ही अल्प है। इसलिये मैं (आचार्य्य) समझता हूँ कि तुमने जिस ब्रह्मस्वरूप को जाना है, वह अभी भी विचार करने योग्य है। अर्थात् अब भी समझना बाकी है ॥१०॥१॥

मैं ब्रह्म को अच्छी तरह जानता हूँ ऐसा नहीं समझता हूँ और नहीं जानता, ऐसा भी नहीं समझता, हम लोगों में से जो जानता और नहीं जानता इस वाक्य का भाव समझते हैं, वे ही ब्रह्म को भी जानते हैं ॥११॥२॥

जो समझता है कि ब्रह्म को नहीं जानते, वस्तुतः वही उसको जानता है और जो समझता है कि ब्रह्म को जानते हैं, वास्तव में वह नहीं जानता है। ज्ञानिगण उसको अविज्ञात कहते हैं और अज्ञानिगण उसको विज्ञात कहते हैं ॥१२॥३॥

प्रत्येक ज्ञान में ब्रह्म स्वरूप अनुभव करने से अमृतत्व लाभ होता है। आत्मा के द्वारा वीर्य्य (बल) प्राप्त होता है, और विद्या के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है ॥१३॥४॥

मनुष्य यदि इसी लोक में ब्रह्म स्वरूप उपलब्धि कर सके तो उसको सत्यलाभ हो सकता है और यदि ब्रह्म को नहीं जान सके, तो महान् अनिष्ट होता है। ज्ञानिगण प्रत्येक भूत में एक ब्रह्म को जानकर इस लोक से प्रयाण करने के अनन्तर अमृत अर्थात् ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करते है ॥१४॥५॥

ब्रह्म ने देवताओं के हितार्थ असुरों को पराजित किया, ब्रह्म के किये हुए उस जयलाभ से देवताओं ने अपने को गौरवान्वित समझा। उन्होंने समझा कि यह विजय और यह महिमा हमारी ही है, अन्य की नहीं ॥१५॥१॥

देवताओं के इस मिथ्या अभिमान को ब्रह्म समझ गये। वे देवताओं के निकट आविर्भूत हुए किन्तु इस आविर्भूत रूप का दर्शन करके भी देवतागण नहीं समझ सके कि, यह महत् पूजनीय मूर्त्ति क्या है ॥१६॥२॥

देवताओं ने अग्नि से कहा था कि हे जात वेद—अग्नि! यह यक्ष क्या है सो तुम (जाकर) मालूम करो। अग्नि भी तथास्तु कहकर (उसी की ओर चले गये) ॥१७॥३॥

अग्निदेव उस यक्ष के समीप पहुँचे, यक्ष ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? अग्नि ने कहा कि, मैं अग्नि हूँ और जातवेदा नाम से प्रसिद्ध हूँ ॥१८॥४॥

ब्रह्म ने पूछा कि तुम्हारी क्या सामर्थ्य है ? (अग्नि ने कहा) इस संसार म जो कुछ पदार्थ है, उन सबको ही जला सकता हूँ ॥१९॥५॥

'यह दग्ध करो' कहकर ब्रह्म ने उस अभिमानी अग्नि के सामने एक तृण रक्खा। अग्नि भी बहुत उत्साह के साथ तत्क्षण उसके समीप पहुँचे, किन्तु उसको जलाने में समर्थ नहीं हुए। तब वहाँ से लौट आये और देवताओं से कहा कि वह यक्ष कौन है सो नहीं समझ सका ॥२०॥६॥

अनन्तर देवताओं ने वायु से कहा कि, हे वायो ! तुम जान आओ कि यह यक्ष कौन है ? वायु ने कहा कि ऐसा ही हो ॥२१॥७॥

वायु उस यक्ष के निकट पहुँचे। यक्ष ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो ? वायु ने कहा मै वायु हूँ और मातरिश्वा हूँ ॥२२॥८॥

यक्ष ने वायु से पूछा कि, ऐसे गुणसम्पन्न तुममें क्या सामर्थ्य है ? वायु ने कहा कि इस पृथ्वी में जो कुछ है, मै उन सबों को आदान अर्थात् ग्रहण करने में समर्थ हूँ ॥२३॥९॥

यक्षने इस प्रकार शक्ति के अभिमान रखने वाले वायु के सामने एक तृण रखकर कहा कि, इसको तुम ग्रहण करो। वायु बड़ी जल्दी से जाकर सारे बल और उत्साह के प्रयोग से भी उसको ग्रहण करने में समर्थ नहीं हुए। तब लौट आकर देवताओं से कहा कि, यह यक्ष कौन है, सो मैं नहीं जान सका हूँ ॥२४॥१०॥

अनन्तर देवताओं ने इन्द्र से कहा कि हे पूज्य इन्द्र ! यह यक्ष कौन है ? सो तुम जान आओ। इन्द्र भी तथास्तु कहकर यक्ष की ओर चले, किन्तु यक्ष इन्द्र के निकट से अन्तर्हित हो गये ॥२५॥११॥

उसी आकाश में बहुविध शोभासम्पन्ना, एवं मानो हेमाभरण से भूषिता अथवा हिमालय कन्या उमा को स्त्री आकार में विद्यारूप से आविर्भूत देखकर तथा यक्ष के वृत्तान्त का इनसे पता लगेगा ऐसा समझकर, देवराज इन्द्र उनके समीप गये और उनसे पूछा कि, यह यक्ष कौन है ? ॥२६॥१२॥

उमा ने इन्द्र को कहा कि यह ब्रह्म है। ब्रह्म की विजय में तुमलोग इसी प्रकार महिमा लाभ करो। तब इन्द्र ने समझा कि वे यक्ष ब्रह्म ही थे ॥२७॥१॥

अग्नि, वायु, इन्द्र इन तीनों देवताओं ने नेदिष्ठ अर्थात् समीपवर्ती ब्रह्म को स्पर्श किया था, अर्थात् उनके सान्निध्य को प्राप्त किया था, और उन लोगों

ने ही प्रथम उनको ब्रह्मरूप से जाना था, इसी कारण उन्होंने अन्यान्य देवताओं को अतिक्रम किया था ॥२८॥२॥

इन्द्र ने ही उस सन्निकटस्थ ब्रह्म को स्पर्श किया था, एवं पहले उसको ब्रह्म रूप से जाना था, इसी कारण उन्होंने अन्यान्य देवताओं को अतिक्रम किया था ॥२९॥३॥

उस ब्रह्म के विषय में उपदेश यह है कि यह जो विद्युत् का स्फुरण है एवं यह जो चक्षु का निमेष है, ब्रह्म का विकाश तथा प्रतीति तदनुरूप है। यह देवताविषयक उपमान (सादृश्य) होने से "अधिदैवत" नाम से प्रसिद्ध है ॥३०॥४॥

अनन्तर ब्रह्मविषयक अध्यात्म आदेश कहा जाता है, मन मानों ब्रह्म के निकट गमन करता है। साधक इस मन के द्वारा निरन्तर अतिशय रूप से ब्रह्म को स्मरण किया करता है। ब्रह्म के विषय मे इसी प्रकार मानस चिन्ता संकल्प करना होता है ॥३१॥५॥

पूर्वोक्त ब्रह्म ही वन अर्थात् प्राणियों के भजनीय है, इसी कारण "तद्वन" रूप से ही उनकी उपासना करनी चाहिए। जो कोई उनको उक्त प्रकार से जानते हैं, सारे प्राणिमात्र ही उनके निकट अभीष्ट की प्रार्थना करते हैं ॥३२॥६॥

(इस प्रकार उपदेश प्राप्त शिष्य ने आचार्य से कहा) भगवन् (मुझे) उपनिषद्—ब्रह्मविद्या के सम्बन्ध मे उपदेश प्रदान करें। आचार्य ने कहा मैंने तुमसे उपनिषद् कही है। वह उपनिषद् क्या ? ब्रह्मविषयक उपनिषद् ही मैंने तुमसे कही है ॥३३॥७॥

तप, दम, कर्म, वेद और वेदांग उसके प्रतिष्ठा रूप है। अर्थात् प्राप्ति के उपायभूत है और सत्य उसका आयतन – आश्रम स्थान है ॥३४॥८॥

जो लोग यथोक्त प्रकार से इस ब्रह्मविद्या को जानते हैं, वे अपने पाप को विदूरित करके सर्वश्रेष्ठ एवं सुखात्मक ब्रह्म मे अवस्थान करते है ॥३५॥९॥

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पंक्ति
उससे	जिससे	२	४
ऐतरयोपनिद्	ऐतरेयोपनिषद्	३	७
आरण्य	अरण्य	४	१५
किये है समझने	किये है, समझने	७	२५
बानप्रस्थ	वानप्रस्थ	८	५
शांति	शान्ति	१०	२
कान, शारीरिक	कान-शारीरिक	१०	३
भगवान्	भगवन्	१०	५-६
है। धैर्यवान्	है अतः धैर्यवान्	१०	२१
उसी के	उसी को	११	२६
गंध के	गंध का	११	३१
जानों	जानो	१२	१
परे है्	परे है	१२	२१
जला दो",	जला दो"।	१४	१८
अन्तर्धान	अन्तर्ध्यान	१५	१६, २३
"	"	८१	२१
"	"	८४	१४
आदि का	आदि	१७	२१
भगवान्	भगवन्	१७	२२, २५
Upnishad	Upanishad	१८	१, २
"	"	३२	९
"	"	१९	६, १२
"	"	२५	१३, २०, २८
"	"	२६	५
Well develcoped	Well-developed	१९	५
"	"	३२	८
"	"	१११	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पंक्ति
Therefore	therfore	२०	२
There upon	Ther-upon	२३	९
lightening	lightning	२४	२५
आदि का	आदि	३१	१५
लोगों से	लोगो का	३८	३२
From	from	५१	२१
यो	य !	५१	२६
कहते है	कहते है्	५३	२२
existance	existence	६०	१३
बड़	बड़े	८४	१०
विजय से	विजय में	८५	२६
सर्वत्रगं	सर्वत्रग	९८	२४
गतिदुखं	गतिर्दुक्ख	९८	२७
दु-ख	दुक्ख	९८	२९
जीवन	जीव	९९	३
इन्ि याँ	इन्द्रियाँ	९९	१५
जैसे	जैसे	९९	२५, २७
उदनिषद	उपनिषद्	१०१	१
तस्ये	तस्यै	१०२	११,१३,१५,१८
करें	करे	१०३	२१
Upnishad	Upanishad	१०४	१९
,,	,,	१०६	२६
,,	,,	१११	३,६
abad	abod	१०४	२२
Brahma	Brahmi	१०४	२५
blissfull	blissful	१०४	२७
आदि का	आदि	१०८	३०
deny	denyme	१११	४
गाड	गार्ड	११२	२४
पेन्सिल	पेन्शन	११३	२७

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पंक्ति
किया···	किया।	११३	१८
वाकनावा	वकनावा	११४	७
डाक्कर	डाक्टर	११४	२१
एम० बी० बी एस	एम० बी० बी० एस०	११४	२०
स्टैण्डर्ड	स्टैण्डर्ड	११४	२५
बी० एस सी	बी० एस० सी०	११४	२९, ३०
इटौरा म	इटौरा में	११५	४
Whilled	willed	१२२	६
known	know	१३०	१२
Self exertion	self-exertion	१३१	१७
KEN	KENE	१४१	६